एक ऐतिहासिक कथा

मंझा

(नल-दमयंती का प्रथम भाग)

पं. रवि शर्मा एडवोकेट

उत्कर्ष प्रकाशन

ISBN: 978-93-

C सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक : **उत्कर्ष प्रकाशन**
मुख्य कार्यालयः
142, शाक्य पुरी, कंकरखेड़ा,
मेरठ कैन्ट-250001 (उ0प्र0)
फोनः 8791681996
प्रशासनिक कार्यालयः
लोहिया गली-4, बाबरपुर, शाहदरा,
दिल्ली-110 094 फोनः 8218114205

ई-मेल : uttkarshprakashan@gmail.com

वेबसाइट : utkarshprakashan.in

प्रथम संस्करण : 2021
मूल्य : ₹ 150
रचनाकार : **पं. रवि शर्मा, एडवोकेट**
रामनगर, शुक्लागंज, उन्नाव, उ.प्र.
मूल निवासीः ग्राम व पोस्ट-कटरा सआदत
गंज, जिला- बदायूं (यू०पी०) मो. 9839382750

प्राक्कथन

प्रारम्भ से ही भारत देश लोक कथाओं और किवदंतियों का देश रहा है। भारत में इतिहास को संजोने के लिखित एवं श्रुति दोनों विकल्प हमेशा से ही खुले रहे हैं। अगर हम यह कहें कि लिखित से अधिक श्रुति पद्धति प्रभावी रही है, तो शायद अतिशयोक्ति नहीं कही जाएगी।

हमारे विद्वान लेखकों, कवियों ने इन एतिहासिक कथाओं, लोक कथाओं और किवदंतियों का समय-समय पर अपनी-अपनी मनोवृत्ति के हिसाब से संकलन-लेखन भी किया है। किन्तु भारतीय समाज के कथा प्रेमी होने के कारण कथाओं को अधिक रुचिकर बनाने के प्रयत्न में गायकों, कहानी वाचकों, कलाकारों, आदि ने मूल कथाओं को अपभ्रंश करके कथाओं के मूल अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया है।

भारत के गौरवमयी इतिहास में कई कथायें, कहानियाँ, किवदंतियां आज इस स्थिति में है कि उनके पुनः शुद्धीकरण के साथ लेखन की महती आवश्यकता है। जैसे महारानी कैकेई, रानी पिंगला, राजनर्तकी वासवदत्ता, नगरवधू चित्रलेखा, ढोला-मारू की कथा, नल-दमयंती की कथा आदि।

इन सभी विषयों में से चुनकर मैंने इस खण्ड काव्य में नल-दमयंती की कथा को आधार बनाया है, वजह- बचपन से मैंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ढोला (गायन की एक विधा) गायकों से नल-दमयन्ती की कथा को श्रवण किया किन्तु जैसा कि हर कथा के साथ होता है पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोक गायकों ने उक्त कथा कों भी अतिशयोक्ति के सागर में इतना डुबो दिया कि भगवान वेद व्यास द्वारा रचित महाभारत में किया गया नल दमयंती का चित्रण तो विलुप्त ही हो गया।

इस कथा को चुनने का एक कारण यह भी है कि नल-दमयंती की जो सम्पूर्ण कथा लोक गायकों द्वारा गाई जाती है, महाभारत में मात्र

उसके एक भाग का ही वर्णन मिलता है। और सम्पूर्ण कथा की कोई भी प्रमाणिक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। यह कथा मात्र कुछ लोक गायकों द्वारा मौखिक रूप से सहेजी जा रही है। किन्तु जैसे-जैसे यांत्रिक युग आ रहा है, लोक गायकी को गाने-वाले और सुनने वाले शनैः शनैः कम ही होते जा रहे हैं। और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हम इन कथाओं के बारे में समय से नहीं जागे तो यह शीघ्र ही विस्मृत हो सकती हैं ।

मैंने अपने इस प्रथम प्रयास में कथा कों नल-दमयंती में से राजा नल के माता-पिता और राजा नल के जन्म पर केन्द्रित किया है। मैंने पुरानी कथाओं में पाठकों की अभिरुचि बढ़ाने के निमित्त कथा कों जन साधारण भाषा में कहने की कोशिश की है। अधिक प्रयोग न करते हुये मैंने उक्त कथा का संयोजन दोहा और ताटंग छंद को आधार बना कर किया है। मैंने उक्त खण्ड काव्य की रचना करते समय यह भी ध्यान रखा है कि आवश्यकता पड़ने पर उक्त कथानक लोक गायकों द्वारा भी गायन योग्य बना रहे। मैंने इस कथा में पनपी सामाजिक भ्रांतियों एवं अति अतिशयोक्ति को भी कम करने का प्रयास किया है। मैंने प्रयास किया है कि उक्त कथा में सामाजिक साधारण रीति-रिवाज एवं व्रत-त्योहार भी वर्णित हो ताकि सनद रहे ।

मैं उक्त खण्ड काव्य की किसी पंक्ति कों उद्धरण करके किसी तरह की विशेषता नहीं दर्शाना चाहता हूँ, पूरा खंडकाव्य एक भाव में पिरो. कर मैंने पठनीय एवं गवनीय बनाने का प्रयत्न किया है। पाठक न्यायाधीश होते हैं, खण्ड काव्य आपके हाथों में है, पढ़िये और फैसला कीजिये। मैं प्रशस्ति और आलोचना दोनों का सम्भाव से स्वागत करूंगा।

पं० रवि शर्मा (एडवोकेट)
मोबाइल 9839382750

***

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1–	स्तुति	06
2–	पृष्ठभूमि	07
3–	मंझा विवाह	10
4–	मंझा गर्भ	12
5–	रनियों का षड़यंत्र	13
10–	राजा का विलाप	19
11–	मंझा का वनवास	26
12–	पुरोहित और जल्लादों का राज्य त्याग	33
13–	मंझा–लच्छू मिलन	38
14–	विरही सावन	42
15–	मंझा–रघुधन परिचय	45
16–	होली	51
17–	अश्वनी कुमारों से भेंट	57
18–	नल जन्म	64
19–	नामकरण संस्कार	75
20–	अग्रकथा	80

एक ऐतिहासिक कथा

नल-दमयंती का प्रथम भाग

"मंझा"

स्तुति

कुंडलियाँ

प्रथम पूज्य गुरुवर चरण, मातु-पिता सिर नाय ।
नल-दमयंती की कथा, लिखता कलम उठाय ।।
लिखता कलम उठाय, सुमिर गजवदन विनायक ।
करिए मुझ पर कृपा, शिवा-सुत जग के नायक ।।
सकल पदारथ व्यर्थ, ज्ञान है सबसे उत्तम ।
इसलिए पूजता देवि, सरस्वती को मैं प्रथम ।।

ताटंग छन्द

तुम कंठ विराजो सरस्वती, मैं नल की कथा सुनाता हूँ ।
उससे भी पहले निज माता, निज पिता को शीश नवाता हूँ ।।
कहते हैं बिना प्रेरणा के, कब कवि कविता को करते हैं ।
फिर कैसे भूलूँ मैं उनको, जो मुझको प्रेरित करते हैं ।।
कवि मित्र पिता और पुत्री का, मन से मैं वंदन करता हूँ ।
जिन-जिन से मिली प्रेरणा है, उनका अभिनंदन करता हूँ ।।

कवित्त

प्रेरित करो हे देवि मुझको, लिख सकूँ नल की कथा ।
नल की ही क्यों नल मातु की, पितु की भी हो जिसमें व्यथा ।।
जब नाग कार्कोटक ने अपना, मान कर अपना अपना लिया ।
केवल मदद को ही उन्हें, था गौर से श्यामल किया ।।

है रूप इतना देखि कर के, इन्द्र भी निज सिर धुने ।
वह देवि दमयंती बनी, अर्धांगिनी उनकी सुने ।।
त्यागा उन्होने अग्नि को, यम को वरुण को इन्द्र को ।
अपना लिया स्वयंवर में उनने, नल बली राजेन्द्र को ।।
निज भ्रात पुष्कर ने जिन्हें, था कपट कर के छल लिया !
ऋतुपर्ण के आश्रित बने, दर-दर भटकती थी त्रिया ।।
जब दुक्ख इतना था भुनी, मछली गिरी जा ताल में ।
तब धर्म से विचले नहीं, पालन किया हर हाल में ।।
है यह कथा 'नल' की नहीं, नर श्रेष्ठ की है जानिए ।
अब इस कथा को धैर्य का, आधार स्तम्भ मानिए ।।

पृष्ठभूमि

दोहा- सुख-दुख का इस जगत में, है घनिष्ठ सम्बंध ।
जन्म लेत ही होत है, इनसे ही अनुबन्ध ।। (१)

आओ चलते उस काल में हम, जब नल दमयंती रहते थे ।
जब मानव समझा करता था, जो भी पशु पक्षी कहते थे ।।
यह नहीं आज की गाथा है, यह बहुत पुरानी बातें हैं ।
विश्वास न हो तो पढ़ देखो, महाभारत जिसे बताते हैं ।।
क्यों अब बैठे हो मौन मित्र, वनपर्व खोलकर देखो तो ।
है जुएं के जो लाभ हानि, चौथे अध्याय से पढ़ लो तो ।।

दोहा- भ्राता भार्या साथ में, व्यथित युधिष्ठिर राज ।
सर्वश्व जुएं में हार कर, भोग रहे वनवास ।। (२)
एक शिला पर बैठ कर, सोच रहे नृप राय ।
छिन्न-भिन्न सब कर दिया, तुच्छ जूएँ ने हाय ।। (३)

हैं पाँच प्रतापी पांडव जो, उनमें मैं भ्राता ज्येष्ठ बना ।
फिर करके ऐसा नीच कर्म, क्यों दिखलाया है नीचपना ।।
कहते हैं मुझको धर्म श्रेष्ठ, क्या यही धर्म की बातें हैं ।
क्या राज पाट भ्राता भार्या, जूएँ में हारे जाते हैं ।।
ना खेले होते सार पाँस, ना सहते यह अपमान सभी ।
क्या यही दुशासन में बल था, छू पाता द्रोपदि केश कभी ।।
क्यों चीर हरण होता उसका, जो पाँच पतिन की प्यारी है ।
क्यों आना पड़ता नटवर को, जिनकी वह बहिन दुलारी है ।।
अतिएव सुनो सज्जनों सभी, यह जुआ बुराई का घर है ।
मिटते है राजा महराजा, योद्धा हो जाते कायर हैं ।।

दो०- महर्षि वृहदश्व ने किया, आकर जब हरि नाद ।
तंद्रा से बाहर हुये, तब वे पांडव नाथ ।। (४)
उठ बैठा तत्काल ही, शिला छोड़ वह वीर ।
किया प्रणाम महर्षि को, होकर अति गंभीर ।। (५)

आशीर्वाद दिया ऋषि ने, पर आँखें चिंता लीन हुई ।
बोले यों युधिष्ठिर से महर्षि, क्यों मुख की कान्ति मलीन हुई ।।
हैं स्वयं धैर्य से पूर्ण आप, फिर कृष्ण सखा हैं अर्जुन के ।
उनकी लीला ही सुख-दुख है, हे तात खोल लो पट मन के ।।
यह राज पाट यह धन वैभव, मिथ्या है मन का धोखा है ।
असली तो थाती धर्म कर्म, या श्रीनागर की पूजा है ।।
अतिएव मुक्त होकर दुख से, इस पृथ्वी का संताप हरो ।
जो पापी है भू भार बने, उनका बढ़कर संहार करो ।।

दो०- युधिष्ठिर ने जब सुना, ऋषि का यह उपदेश ।
अन्तर्मन निर्मल हुआ, जाता रहा क्लेश ।। (६)

दो०- बोले भगवन मुझे ना, धन वैभव की चाह ।
बस केवल अपमान का, मेरे मन में डाह ।। (७)

भगवन मैं निश्छल प्राणी था, अपनों को अपना माना था ।
इसलिए फंस गया छलियों में, छल का ही जहाँ ठिकाना था ।।
शकुनी थे मामा मेरे भी, दुर्योधन भ्राता था मेरा ।
दोनों ने मुझसे कपट किया, कर लिया हरण सर्वस मेरा ।।
इन बातों का स्मरण हाय, वन में दुगुना दुख देता है ।
रातों में आती ना निद्रा, तप में भी मन ना रमता है ।।
मैं जीवित ही निर्जीव बना, साँसे अब कच्चा धागा हैं ।
इस पृथ्वी पर मेरे जैसा, हे नाथ न कोई अभागा है ।।

दो०- यह सुन कहा वृहदश्व ने, नहीं नहीं नर नाह ।
तुमसे थी ज्यादा कठिन, राजा नल की राह ।। (८)
भ्राता क्षत्री दास और, ब्राह्मण तुम्हरे पास ।
राजा नल के पास था, केवल निज विश्वास ।। (९)
तुमसे ज्यादा घाव थे, तुमसे ज्यादा पीर ।
सुनो युधिष्ठिर राज वो, कैसे बना फकीर ।। (१०)

कथा प्रारम्भ प्रथम खंड

'मंझा'

रूहेलखण्ड में बादोंगढ़, एक नामी राज्य कहाता था ।
अपने भाई के साथ जहां, पर अजयपाल इक राजा था ।।
भाई भाई की अनबन ने, दो खण्ड राज्य के कर डाले ।
आधी परजा को अजयपाल, आधी को महीपाल पालें ।।
थे धर्म परायण अजयपाल, यश कीर्ति कमल था खिला हुआ !
ऋषियों मुनियों औ संतों को, आश्रय था उनसे मिला हुआ ।।
हे युधिष्ठिर इस राजा के, एक 'मंझा' नामक बेटी थी ।
थी एकमात्र संतान अतः, राजा की बहुत चहेती थी ।।

दो०- पुत्री ना रहती सदा, मातु-पिता के संग ।
सबसे इक दिन छूटती, राजा हो या रंक ।। (११)

सुत रहता सदा साथ में है, पुत्री तो दूजे का धन है ।
सुत यदि तर्पण का साधन है, पुत्री अर्पण का साधन है ।।
देनी पड़ती है दान सुता, चाहे कितनी भी प्यारी हो ।
सबके घर से उठती डोली, राजा हो अतः भिखारी हो ।।
यह नहीं आज की परम्परा, यह नियम है युगों युगान्तर का ।
बाबुल का घर कुछ वर्षों का, साजन का घर जीवन भर का ।।
हो गई सयानी 'मंझा' जब, तब वर ढुंढ़वाया राजा ने ।
औ निषद देश के वीरसेन, से व्याह रचाया राजा ने ।।

दो०- जिस बगिया को सींच कर, माली करे तैयार ।
उस बगिया के पुष्प से, क्यों न उसे हो प्यार ।। (१२)

ग्रहस्थाश्रम भी इक बगिया है, माली इसके हम बने हुये ।
संतति है इसकी पुष्प गुच्छ, जो इस बगिया में लगे हुये ।।
जब इस बगिया का पुष्प टूट, झोली में किसी के गिरता है ।
तो क्यों उसको संताप न हो, जो इसका पालन करता है ।।
बस यही सोच कर राजा औ, रानी की आत्मा दुखी हुई ।
वह जाती किसी और के घर, जो इस आँगन में बड़ी हुई ।।
सीने पर पत्थर रख कर के, बेटी डोली में बैठाई ।
हाथी घोड़े औ जवाहरात, देकर के निषद को भिजवाई ।।

दो०- रे युधिष्ठिर अब सुनो, निषद देश की बात ।
वीरसेन रहते जहां, मंझा दे के साथ ।। (१३)

कौन्तेय सुनो कुछ बर्ष बाद, इक ऐसा युग भी आयेगा ।
होगे ना राजा महाराजा, कलयुग का मध्य कहायेगा ।।
पिरजा से शासन शासित हो, राष्ट्राध्यक्ष होगा राष्ट्रपती ।
जो प्रथम पुरुष कहलाएगा, सर्वोपरि होगा राष्ट्रपती ।।
हे युधिष्ठिर कुछ इसी तरह, का शासन निषद राज का था ।
जो राज रहा था निषद देश, रानी मंझा का पति भी था ।।
है एक बात और श्रवण योग्य, जो विद्वानो ने मानी है ।
है निषद देश इस राजा का, पर नरवर गढ़ रजधानी है ।।

दो०- एक सामाजिक बात जो, तुम्हें बतानी और ।
बहु विवाह की प्रथा थी, उन वासर उस ठौर ।। (१४)

थे वीर प्रतापी वीरसेन, फिर राजा पिरथम पदवी थी ।
थीं पाँच रानियाँ पहले से, मंझा रानी तो छटवी थी ।।
धन धान्य कीर्ति यश सुख वैभव, सब कुछ दे दिया विधाता ने ।
छह विवाह किए पर संतति सुख, अब तक ना देखा राजा ने ।।

कहते हैं बारह बरसों में, घूरे के दिन भी फिरते हैं ।
होता है कूड़ा पड़ा जहां, कुछ दिन में महल निखरते हैं ।।
सुनने को संतति की चर्चा, थे कान तरसते राजा के !
मन में सतरंगी तान बजी, सुन गर्भ आ गया मंझा के ।।

दो०- वीरसेन प्रसन्न थे, सुनकर यह संदेश ।
मंत्री बुलवाये तुरत, देने को आदेश ।। (१५)

बोले मंत्री ओ मंत्री, क्या तूने अब तक सुना नहीं ।
कल तक था राजा निरवंशी, वो अब निरवंशी रहा नहीं ।।
अब नहीं समय है रोने का, घर घर में खुशियाँ होने दो ।
जलने दो घी के दीपों को, कुछ दान दक्षिणा होने दो ।।
ऐ कोषाध्यक्ष यहाँ आओ, ताले दो खोल खजाने के ।
विप्रों भिक्षुक और याची को, दो गहनें राजघराने के ।।
सेनापति तोपें चलवाओ, मंत्री साजिन्दे बुलवाओ ।
मेरी इस राज सभा में तुम, दो चार नर्तकी भिजवाओ ।।

दो०- राजाज्ञा से सज गए, नगर, महल, दरबार ।
घर घर में होने लगा, गायन मंगलचार ।। (१६)

है निषद राज की नगरी यह, या स्वर्ग धरा पर आया है ।
इस तरह सजाया जनता ने, राजा पर भी भ्रम छाया है ।।
ढप झांझ कीर्तन की ध्वनियों, का जब मिल शोर उमड़ता है ।
देवों को भी निज बातों को, कानों में कहना पड़ता है ।।
रानी मंझा को राजा ने, शिख से नख भूषण पहनाये ।
तब पांचों रानी ने निज गृह, जलते हुये दीपक बुझवाये ।।
हर तरफ भले ही खुशियाँ थी, पर उनका चित्त उदास हुआ ।
कल तक जो पति हम सबका था, वह अब मंझा का दास हुआ ।।

दो०- ब्रह्मा लिखकर भाग्य को, हो जाते हैं मौन ।
उनने यदि दुख लिख दिया, सुख में बदले कौन ।। (१७)

प्रभु हमको नाच नचाते हैं, वह मारक और उद्धारक हैं ।
कर्ता कहता हम कारक हैं, प्रभु कहते कारण कारक है ।।
हम कठपुतली वो उँगली हैं, सुख दुख के नाच नचाते है ।
वो तो रहते है पर्दे में, कारण वो हमें बनाते हैं ।।
जाने क्या लिख कर मंझा को, प्रभु ने भू पर भेजा होगा ।
जाने क्यों पांचों रानी के, मन को प्रभु ने फेरा होगा ।।
हम तो बस इतना कहते हैं, सबने मिलकर यह यत्न किया ।
मंझा हो जाये देश बदर, पांचों ने यह षड्यंत्र किया ।।

दो०- ईर्ष्या तू जिस सिर चढ़ी, उसको दिया मिटाय ।
ना मालूम क्यों ब्रह्म ने, भेजा तुझे बनाय ।। (१८)

पांचों रानी के हृदय में, जब से ईर्ष्या तू आई है ।
बेचैन चैन ना पल भर को, नेत्रों से नींद उड़ाई है ।।
पांचों सिर जोड़ें बैठी हैं, मन में व्यापित है व्याकुलता ।
मंझा का कंटक खटक रहा, निकले कैसे है आकुलता ।।
सूरज की प्रथम रश्मियां यदि, पहले भू पर आ जायेंगी ।।
अरमान न होंगे पूरे फिर, जीवन भर शूल चुभायेंगी ।।
प्रातः होते ही राजा तो, पंडित जी को बुलवा लेंगे ।
जो मंझा गर्भ सुशोभित है, वे उसका भाग्य बता देंगे ।।

दो०- अर्ध रात्रि जब हो गई, बोली उनमें एक ।
राजपुरोहित को बहिन, बुलवा लो संवेग ।। (१९)

भेजा दासी को दे आज्ञा, फिर राजपुरोहित बुलवाये ।
इतनी ईर्ष्या में अंधी थीं, सोते से ब्राह्मण जगवाये ।।

थे सरल हृदय अनभिज्ञ विप्र, उन रनिवासों की चालों से ।
जहां कपट छिद्र करने बैठा, था दण्ड भेद के भालों से ।।
है कार्य अधिक आवश्यक ही, जो रात्रि गये बुलवाया है ।
यह सोच पुरोहितराज चले, पोथी पत्रा लटकाया है ।।
महलों में पहुँचे पंडित जी, रानी ने पीढ़ा डलवाया ।
फिर स्वर्णाभूषण भरा थाल, ब्राह्मण के आगे रखवाया ।।

दो०- लोभ, मोह और अहं से, रहता दूर सदैव ।
परोपकारी विप्र ही, कहलाता भूदेव ।। (२०)

देखे जब मोती भरे थाल, औ थैला देखा मोहरों का ।
तब राजपुरोहित बोल उठे, रानी यह कार्य छिछोरों का ।।
मुझसे क्या कार्य तुझे रानी, जो माया मुझे दिखाती है ।
रखती जाती हीरे मोती, पर कार्य नहीं बतलाती है ।।
ऐ रानी मैं नादान नहीं, ना ही छोटा सा बालक हूँ ।
अतिएव छोड़ श्रम आज्ञा कर, मैं तो आज्ञा का पालक हूँ ।
पर एक बात का ध्यान रहे, रानी बतलाना कार्य वही ।
हो नीति धर्म से जुड़ा हुआ, और जिसमें हो अन्याय नहीं ।।

दो०- राजपुरोहित की सुनी, जब पांचों ने बात ।
बज्रायुध दिल पर गिरा, सूखे कोमल गात ।। (२१)

छोटी बोली तब मझली से, मझली बोली ऐ बड़ी सुनो ।
दूसरी बोली तब चौथी से, ऐ बहिना क्यों हो खड़ी सुनो ।।
ये राजपुरोहित तो बहिना, पहले ही डगमग डोल रहे ।
कैसे हो नैया पार बता, ये तो वेदांती बोल रहे ।।
बड़की बोली मत घबराओ, करती हूँ बात पुरोहित से ।
यह कार्य उन्हें ही करना है, चाहे वो करे किसी विधि से ।।

कर जोड़ पुरोहित निकट गई, बोली कर दो मम् काज प्रभो ।
मैं पाँच गांव दिलवा दूँगी, इस धन को रखो सँभाल प्रभो ।।

दो०- पुरोहित जी तुम से मुझे, है छोटा सा काम ।
ऐसा करिए कुछ जतन, मंझा छोड़े ग्राम ।। (२२)

कल पोथी पत्रा जब खोलो, उस राजसभा के मध्य प्रभो ।
तब राजा को बतला देना, कुछ राहु केतु में भेद प्रभो ।।
कुछ मीन मेष कुछ तुला मकर, कुछ वृश्चिक की बतला देना ।
मंझा को देश निकाला हो, शनि की ही दशा बता देना ।।
यह सुन कर बोले पंडित जी, क्या मारी बुद्धि तुम्हारी है ।
तुम सब में छोटी मंझा है, फिर गर्भवती सुकुमारी है ।।
मैं समझ गया ओ नीच नारि, तुम सभी जलीं ईर्ष्यानल में ।
पर साथ नहीं मैं दे सकता, निर्णय सुन रानी पल भर में ।।

दो०- सज्जन, दुर्जन, संत या, पंडित, दीन, गमार ।
क्रोध नदी में डूबते सब के शुद्ध विचार ।। (२३)

तब तक नारी देवी होती, जब तक रहती आचरणों पर ।
गिरती तो इतना गिरती है, गिर कर ना चढ़ती नजरों पर ।।
सुन नीति ज्ञान की यह बातें, रानी खिसिया कर झपट पड़ी ।
लिया खींच दुशाला पंडित का, बोली हो कर कुछ दूर खड़ी ।।
अब तक तुझको समझाती थी, अब देख रूप असली मेरा ।
तू रात्रि परे महलों आया, क्या रिश्ता है तेरा मेरा ।।
प्रातः होते ही यह दुशाल, जब राजा को दिखलाऊँगी ।
तो तुझको तेरे कुल समेत, जिन्दा कोल्हू पिरवाऊँगी ।।
अब तक प्रण था मेरा केवल, मंझा को देश निकाला हो ।
अब तभी बचेंगे प्राण सुनो, जब मंझा मृत्यु निवाला हो ।।

दो०- दासी कह दो विप्र से, अब निज गृह को जाय ।
कुल विनाश से बच सके, सोचें वही उपाय ।। (२४)

चल दिये विप्र अपमानित हो, मग में पग साथ न देते हैं ।
वह जाते राह अचेतन से, मृतकों से स्वांस न लेते हैं ।।
मुख सूखा नेत्र जीभ सूखी, पर दिल में अश्रु उमड़ते हैं ।
कुल पत्नी बेटों के चेहरे, सम्मुख दिखलाई पड़ते है ।।
वो कहाँ चले या कहाँ गये, औ कहाँ पहुँचने वाले हैं ।
उसको कैसे यह पता चले, जिसके प्राणों के लाले हैं ।।
धर्म अधर्म निर्मोह मोह में, घंटों अंतरद्वन्द हुआ ।
पर छोटे बच्चे कोल्हू में, दिखते ही मन में द्वन्द हुआ ।।
जिसको माया ना जीत सकी, उसको ममता ने हरा दिया ।
उज्ज्वल चरित्र जो कल तक था, उस पर भी धब्बा लगा दिया ।।

दो०- नींद न आई विप्र को, गई अंधेरी रात ।
पहुँच गये दरबार में, होते देख प्रभात ।। (२५)

कवित्त- सोये न ब्राह्मण रात्रि में, मन में मचा था हलचला ।
कैसे कटी यह रात्रि काली, कौन कह सकता भला ।।
सब लोभ लालच त्याग कर, पाला सदा जिस धर्म को ।
वह जा रहा अब जा रहा, कैसे छुपाऊँ शर्म को ।।
यह सोच ब्राह्मण चल दिये, परिचित अपरिचित से लगें ।
भू भवन अम्बर बृक्ष आदिक, डोलते से सब दिखें ।।
वो सूनी आँखें सूना मन, सूने दरबार में जा पहुंचा ।
है चोबदार की बात ही क्या, स्वच्छता कर्मी भी ना पहुंचा ।।
पर उनको यह ही ज्ञात हुआ, राजा बैठे सिंहासन पर ।
तब होश हुआ जब ठोकर खा, गिर पड़े विप्रवर आसन पर ।।

सन्नाटा पसरा जब देखा, यह सोच पसीना आया है ।
देखेगा कोई जानेगा, मेरे मन पाप समाया है ।।
यह सोच विप्र बाहर भागे, फिर गिरे उठे फिर गिरे उठे ।
एक भीति पकड़ कर खड़े हुये, हो कोई धन्ना लुटे पिटे ।।

दो०- समय हुआ दरबार का, आया राज समाज ।
तब निज पाग संभालते, गये पुरोहित राज ।। (२६)

सिंहासन बैठे वीरसेन, संत्री मंत्री निज आसन पर ।
मंत्री मण्डल से कुछ ऊपर, पुरोहित बैठे उच्चासन पर ।।
फिर राज काज प्रारम्भ हुआ, दरबारी आते जाते हैं ।
पर पुरोहित जी निज पत्रा के, बस पृष्ठ उलटते जाते हैं ।।
कुछ काल चला वह राज कार्य, जब निवृत्त हुये वे राजा जी ।
मंत्री मण्डल के साथ साथ, पुरोहित पर नजर गई उनकी ।।
चिंता की गहन लकीरों को, जब पुरोहित के मस्तक देखा ।
तब बोले राजन हे पुरोहित, क्या लगा रहे जोखा-लेखा ।।
हाँ एक कार्य मैं भूल गया, उस पर भी ध्यान लगाना है ।
मंझा रानी के गर्भ है जो, उसका भविष्य बतलाना है ।।

दो०- उससे पहले विप्रवर, मुझे बताओ बात ।
नेत्रारुण क्यों हो रहे, क्या सोये ना रात ।। (२७)

क्यों नेत्र लालिमा छाई है, हे पुरोहित मुझे बता देना ।
क्यों चिन्तित हो कुछ कष्ट है क्या, या शंका मुझे बता देना ।।
तब पुरोहित बोले हे राजन, ना कष्ट मुझे इस शासन में ।
चिंता तो है उसका कारण, आस्था मेरी सिंहासन में ।।
राजा रानी पुरोहित मंत्री, के शासन बदला करते हैं ।
पर प्रजा और सिंहासन के, सम्बंध न टूटा करते है ।।

इतिहास यही बतलाता है, शासन वह अच्छा होता है ।
जो निज हित अनहित से ऊपर, जनता का मान समझता है ।।

दो०- यह सुन प्रथम ने कहा, हे पंडित महाराज ।
क्यों आवश्यक हो गई, मुझको शिक्षा आज ।। (२८)

क्या कोई गलती मैंने की, या प्रजा को कोई कष्ट हुआ ।
या मेरे मंत्री मण्डल का, कोई मंत्री पथ भ्रष्ट हुआ ।।
क्या न्याय में कोई भेद मेरे, या कोई रानी कुलटा है ।
क्यों आवश्यक उपदेश हुए, बोलो ब्राह्मण कारण क्या है ।।
पुरोहित बोले इन त्रुटियों में, कोई भी त्रुटि ना शासन में ।
रानी मंत्री और प्रजा सभी, हैं कुशल श्रेष्ठ अनुशासन में ।।
पर मुझको ऐसा लगता है, हे नाथ विधाता रूठ गया ।
ग्रहों ने ऐसी चाल चली, कि मेरा धीरज छूट गया ।।

दो०- समय महा बलवान है, कौन पा सका पार ।
देव, दैत्य, मानव सभी, गये समय से हार ।। (२९)

राजन जो आप पूछते हैं, मैं उसका भेद बताता हूँ ।
है पुत्र गर्भ में रानी के, यह सत्य तुम्हें बतलाता हूँ ।।
पर भाग्य कुण्डली में उसके, बुध सूर्य लग्न में राज रहे ।
है पंचम घर बृहस्पति जी का, छठवें में शनी विराज रहे ।।
नवमें में केतू राहु चौथे, दर्शाता अपनी क्षमता को ।
जो पिता को देते दृष्टि दोष, औ महा कष्ट उस माता को ।।
इससे भी आगे कुण्डलि में, बिशोन्तरि दशा बताती है ।
जनता हो सकती नष्ट प्राय, ऐसा दुर्योग बनाती है ।।

दो०- यह सुन राजा प्रथम का, गया माथ चकराय ।
मस्तक पर जल कण दिखे, वदन गया कुम्हलाय ।। (३०)

मन में कुछ आशा बाकी थी, इसलिए कहा यों पुरोहित से ।
मैं समझ नहीं पा रहा विप्र, क्या कहना तुमको है मुझसे ।।
कैसा वृहस्पति कैसा सूरज, कैसे शनि या राहु केतु ।
कैसे माने जो जन्मा ना, जन्मेगा केवल कष्ट हेतु ।।
कहते हैं नेत्र ज्योति होते, है मातु पिता को पुत्र सभी ।
फिर कैसे मुझको दृष्टि दोष, या माँ को होगा कष्ट कभी ।।
क्यों प्रजा व्यथित होगी मेरी, क्यों ऐसे दुर्दिन आएंगे ।
जो किए है मैंने धर्म कार्य, क्या सब मिट्टी मिल जाएंगे ।।

दो०- फिर भी यदि विश्वास है, सच है ज्योतिष शास्त्र ।
साफ साफ कहिए प्रभो, यह विनती है मात्र ।। (३१)

इतना सुन बोले पंडित जी, हे राजन क्षमा कीजिएगा ।
पर शास्त्र लिखित जो बातें है, उन पर भी ध्यान दीजिएगा ।।
मैं क्या मेरा ज्ञान है क्या, या झूठ है क्या या सत्य है क्या ।
यह तो विधना ही जान सका, किसकी किस्मत का तथ्य है क्या ।।
मैं मौन तदपि ग्रह कहते है, जब भी सुत भू पर आएगा ।
माता डायन बन जाएगी, और पिता को अंधा कर देगा ।।
जनता कि प्यारी रानी ही, इस जनता को खा जाएगी ।
अंधे राजा का शासन हो, तो प्रजा कहाँ बच पाएगी ।।

दो०- घन उमड़े नृप नेत्र में, पर ना बर्षा मेह ।
पाषाणी मूरति बनीं, हाड़ मांस कि देह ।। (३२)

मुँह खुला रह गये नेत्र खुले, राजा बेसुध बेहाल हुआ ।
फिर काँपा तो ऐसा काँपा, जैसे भू में भूचाल हुआ ।।

उठना चाहा सिंहासन से, पर पैर कंपे गिर पड़े नृपति ।
दौड़े दरबारी राजवैद्य, सब घेरे उनको खड़े दुखित ।।
क्या हुआ और क्या होगा अब, ना कोई समझ पा रहा है ।
देते ही औषधि राजवैद्य के, नृप को होश आ रहा है ।।
सब बोले की चैतन्य है अब, पर कैसी उनमें चेतनता ।
उनके नेत्रों में झलक रही, सुत औ रानी की व्याकुलता ।।

दो०- नेत्रों में आँसू लिए, सोच रहे नृपराय ।
क्या इस जीवन में मुझे, सुत का सुख है नाय ।। (३३)

मैं चातक कब से प्यासा था, सुत स्वाति बूंद बन आएगा ।
क्या पता था घन के आते ही, सब राजपाट जल जाएगा ।।
बेजुवां चिरैया मंझा प्रभु, जो चहका करती है दिल में ।
ले लेते मेरे प्राण भले, क्यों डाला उसको मुश्किल में ।।
हे सभासदो तुम बतलाओ, क्या करूँ कहाँ को जाऊँ मैं ।
कैसे मंझा और जनता के, दोनों के प्राण बचाऊँ मैं ।।
मैं तुम्हें सौपता न्याय डोर, तुम न्याय करो दुखियारे का ।
इस विह्वल पागल राजा का, मंझा का राजदुलारे का ।।

दो०- यह सुनकर दरबार में, रहा कुछ समय शोर ।
जब सब में सम्मति हुई, बोले तब कर जोर ।। (३४)

हे राजन हम सब मंत्री है, निर्णय कैसे दे सकते हैं ।
इस काल यहाँ जो दुविधा है, उस पर निज मत दे सकते हैं ।।
हे राजन तुमको सुत समान, जितनी भी प्रजा तुम्हारी है ।
इसका पालन इसकी रक्षा, राजा की जिम्मेदारी है ।।
यदि इसका कोई काल बने, उसको मिटवाना ही अच्छा ।
लाखों पुत्रों के लिए एक को, भेंट चढ़ाना ही अच्छा ।।

अब मोह छोड़कर हे राजन, निज कर्म को धार दीजिएगा ।
कर्तव्य न्याय की वेदी पर, रानी न्योछार कीजिएगा ।।

दो०- मित्रों इस संसार में, भांति भांति के रंग ।
खुशबू देते पुष्प यदि, कांटे करते तंग ।। (३५)

जो महक रही थी फूल सी कल, वह आज प्रजा को शूल बनीं ।
जो कल तक रानी सोना थी, वह किस्मत से अब धूल बनीं ।।
राजा ने कहा पुरोहित से, हाँ सत्य विधाता रूठ रहा ।
सिंहासन भारी हुआ मुझे, मंझा से नाता टूट रहा ।
मैं पाता मृत्यु या अंधापन, या जंगल में रहता जाकर ।
ना खोता प्यारी रानी को, यह मुकुट शीश ना होता गर ।।
हे मंत्री चुप क्यों बैठे हो, जल्लादों को बुलवाओ तो ।
मैं बंधा कर्तव्य पाँस में हूँ, अब अपना धर्म निभाओ तो ।।

दो०- राजाज्ञा जब हो गई, आ पहुंचे जल्लाद ।
क्या आज्ञा मुझको नृपति, कहा नवाकर माथ ।। (३६)

राजन बोले जल्लादों से, तुम जाओ अब रनिवासों में ।
वन में ले जाकर कत्ल करो, मंझा जो बसती श्वांसों में ।।
है यज्ञ मेरा यह प्रजा हेतु, जिसमें मंझा पूर्णाहुति है ।
किस किसको चीर दिखाऊँ मैं, दिल कितना मेरा आहत है ।।
भाई इक विनती और सुनो, रानी को अधिक रुलाना ना ।
मैं मुँह दिखलाने योग्य नहीं, उन्हें मेरे सम्मुख लाना ना ।।
पर लेते आना वस्त्रादिक, रानी की अंत कहानी को ।
वह प्रजा को स्वयं बता देंगे, डायन की खत्म कहानी को ।।

दो०- धर्म कर्म करिए सदा, रखिए सब पर नेह ।
क्या मालुम विपदा पड़े, बन विद्धुत कब गेह ।। (३७)

कौंतेय चार छः सैनिक तब, रानी की ड्योढ़ी पर पहुँचे ।
जैसे हो राज्य चंद्रिका को, ढकने को काले घन पहुँचे ।।
मंझा के स्वप्निल नेत्रों ने, यह देखा दृश्य झरोखे से ।
ये सोच गुलाबी गाल हुये, 'वे' आते फिर मिलने मुझसे ।।
लगता है प्रेम के बंधन में, है राज कार्य का ध्यान नहीं ।
फिर दौड़े आते भूले यह, कि किया रात्रि विश्राम यहीं ।।
आने दो मैं ना बोलूंगी, रूठूंगी मनाएगे सैयां ।
पर मैं कर्तव्य बताऊँगी, वे गले में डाले गलबहियाँ ।।

दो०- प्रेम नहीं कर्पूर है, जलते ही उड़ जाय ।
प्रेम अग्नि में दिल जले, चाहत बढ़ती जाय ।। (३८)

धक धक दिल धड़का राजा का, रानी को जब वह याद किये ।
झर झर झरने से झरे अश्रु, ना रोके झरनें झरने दिये ।।
ये इधर अकेले व्याकुल थे, पर उधर भीर कुछ भारी थी ।
जल्लाद वहाँ पर जा पहुँचे, जहां मंझा प्राण दुलारी थी ।।
थी खोई प्रीतम ख्वाबों में, देखा उसने जल्लादों को ।
भृकुटी टेढ़ी कर नेत्र लाल, डांटा उसने जल्लादों को ।।
ऐ जल्लादों तुम आए क्यों, इन रनिवासों के आँगन में ।
क्या मृत्यु से तुम भयभीत नहीं, या राजा का डर ना मन में ।।

दो०- जड़ तो जड़ ही है अरे, चेतन तू तो चेत ।
भ्रम निकुंज यह जगत है, क्यों तू पड़ा अचेत ।। (३९)

पगले पग रख तू सँभल सँभल, यह जीवन है बस दो दिन का ।
क्या पता कि कब दुख की आँधी, सुख को कर दे तिनका तिनका ।।
थी जहां बंसत की मादकता, जीवन के पल रंगीले थे ।
वहाँ खड़े वधिक वध करने को, पर नेत्र अश्रु से गीले थे ।।
थे खुले नेत्र जल्लादों के, सम्मुख का दृश्य न देख रहे ।
थे कर्ण मगर श्रुतिहीन हुये, बस पैर जमीं को खोद रहे ।।
वे सोच रहे थे रानी को, कैसे राजाज्ञा बतलाऊँ ।
जिनके सुराज्य में पोषित हूँ, उनको कैसे वन ले जाऊँ ।।

दो०- सोचों से बाहर हुए, कर्म का आया ध्यान ।
रानी से जल्लाद यों, करने लगे बयान ।। (४०)

मैं सेवक हूँ राजाज्ञा का, बिन आज्ञा ना आया रानी ।
क्या जानूँ शासन की बातें, मैं मूढ़ मगज हूँ अज्ञानी ।।
पर एक बात मैं समझ रहा, शासन करना आसान नहीं ।
शिवि हरिश्चंद्र और मौरध्वज, दे चुके हैं निज बलिदान यहीं ।।
यदि शरणागत की रक्षा को, शिवि ने निज मांस चढ़ाया था ।
तो मौरध्वज ने अतिथि हेतु, सुत पर आरा चलवाया था ।
सत हेतु राज्य पत्नी सुत को, था हरिश्चंद्र ने बिसराया ।
हे रानी नृप ने प्रजा हेतु, तुम्हें काल के हाथों पकड़ाया ।।
अतिएव महल को छोड़ आज, हे रानी वन चलना होगा ।
राजाज्ञा के अनुसार तुम्हें, जीवन अर्पण करना होगा ।।

दो०- धूप दिखे बरसात में, सावन पतझड़ संग ।
प्रभु दिखलाते हैं हमें, अपने अदभुत रंग ।। (४१)
रानी ने जब यह सुनी, जल्लादों की बात ।
सिर घूमा भू पर गिरीं, काँपा कोमल गात ।। (४२)

जो पर्देवाली रानी थीं, वह वेसुध पड़ी जमीं पर है ।
आँचल ढुलका है सीने का, औ बिखरे बाल कहीं पर है ।।
गिर गए मांग के मोती भी, हाथों के कंगन चटक गए ।
हँसली हुमेल और हार टूट, तन के वस्त्रों में अटक गए ।।
कहते हैं पतझड़ का मौसम, फूलों पत्तों पर घात करे ।
पर यहाँ तो डाली टूट रही, क्या पतझड़ की हम बात करें ।।
मुख पीला तन अकड़ा पल में, महलों की खुशियाँ क्षीण हुई ।
बाँदी दासी जल्लाद कहें, रानी अब प्राण विहीन हुई ।।

दो०- जीव अमर ना रह सके, मर भी सकता नाहिं ।
जन्म मृत्यु तब होत है, जबहिं विधाता चाहि ।। (४३)

जो चोटी सिर की शोभा थी, वो धूल धूसरित हुई पड़ी ।
दासी ने जल डाला मुख में, कुछ स्वांस चली उखड़ी उखड़ी ।।
धीरे धीरे पुतली खोलीं, फिर जल्लादों पर नजर गई ।
जो थोड़ी लाली बाकी थी, वह भी चेहरे से उतर गई ।।
कुछ कहा तो यह प्रतीत हुआ, आवाज कुएं से आती है ।
कर रहीं इशारा हाथों से, पर समझा कुछ ना पातीं है ।।
कुछ स्वस्थ हुई तो उठ बैठी, फिर बोली यों जल्लादों से ।
क्या खता हुई बतलाओ तो, क्यों रिश्ता टूटा स्वासों से ।।
जाने अनजाने में मैंने, ऐसा भाई क्या पाप किया ।
जो मुझे मारने हेतु यहाँ, राजा ने तुमको भेज दिया ।।

दो०- भाग्य लिखा मिटता नहीं, कोटिन करो उपाय ।
राम लखन और जानकी, वन वन भटके जाय ।। (४४)

जल्लाद कहें यों रानी से, सब खेल है भाग्य विधाता का ।
इसलिए नहीं हम अपराधी, ना दोष प्रजा या राजा का ।।
उसको दोषी कैसे कह दूँ, जो वंश दीप बन आया है ।

बस इतना कहता नटवर ने, हम सबको नाच नचाया है ।।
पर पंडित कहते हे रानी, तुम पुत्र रत्न तो पाओगी ।
उसके जन्मत ही प्रजा को तुम, डायन बन कर खा जाओगी ।।
अतिएव दुखी हो सभासदों, पर निर्णय डाला राजा ने ।
तुमको न्योछावर कर डाला, निज धर्म को पाला राजा ने ।।

दो०- नैनन का अंजन बहा, काले हुए कपोल ।
रानी का धीरज छुटा, सुन वधिकों के बोल ।। (४५)

वो घायल पक्षी सी तड़प उठीं, या मीन नीर बिन विकल हुई ।
या करी शरारत हो शिशु ने, फेंकी उखाड़ कर छुई मुई ।।
दुख गिरा शीश पर विद्धुत बन, या पत्थर गिरा बड़ा सा हो ।
रानी की ऐसी दशा हुई, चंदा को ढके कुहासा हो ।।
यहाँ शोक बबण्डर बन आया, क्या तूफानों की बात करें ।
ले गया उड़ा कर ख्वाबों को, क्या अरमानों की बात करें ।।
चंचल इठलाती नदी कभी, आ मिली निषद के सागर में ।
वह सूख समाती दिखे हाय, सुत सहित काल के गागर में ।।

दो०- रानी हैं विह्वल अधिक, रोतीं भुजा पसार ।
बाँदी को बुलवा निकट, कहा पुकार पुकार ।। (४६)

ऐ बाँदी जा दरबार को तू, प्रियतम को यहाँ बुला दे तू ।
मैं वन को जाती बलि होने, अन्तिम दर्शन करवा दे तू ।।
यह भी कह देना साजन से, खांडा अपना लेते आए ।
जिन हाथों से है मांग भरी, उन से ही यह सिर ले जाएँ ।।
कहना भ्रम है कि छुपे आप, ना छुप सकते इस दासी से ।
जिसके उर में घर कर बैठे, उस पागल प्रेम पियासी से ।।

कह देना साथ चलो मेरे, प्रण करके प्रण से हटना क्या ।
मैं ना उनको खा जाऊँगी, अरे मरे हुए से डरना क्या ।।

दो०- रानी बिलखे महल में, भू पर पटके माथ ।
दास दासियाँ कह उठे, यह दुख लखा न जात ।। (४७)
पर बाँदी को रोककर, बोले यों जल्लाद ।
राजाज्ञा है कोइ ना, जाये राजन पास ।। (४८)

सुन आज्ञा रानी फिर रोईं, बोलीं क्यों प्रियवर भुला दिया ।
क्या डायन बनने से पहले, ही डायन मुझको समझ लिया ।।
कल तक मैं प्राणों प्यारी थी, पर आज पिशाचिन बन बैठी ।
थे कौन जन्म के पाप हाय, जो गर्भ को धारण कर बैठी ।।
जब चांद छुपा मुख को बैठा, तो कैसे यह चाँदनी रहे ।
जब जीवन बगिया उजड़ गई, तो कैसे उसमें कली रहे ।।
अतिएव ले चलो जल्लादों, हरने जनता के त्राणो को ।
मैं प्राणनाथ के वचन हेतु, कुर्बान कर रही प्राणों को ।।

दो०- यह कहकर वन को चली, रानी आप ही आप ।
फिर आई पिय याद तो, करने लगी विलाप ।। (४८)

कवित्त- मत भेजिये मुझको सजन, जंगल में वध के हेतु को ।
मत तोड़िए इस मांग के, पावन सुमंगल सेतु को ।।
हाथों के कंगन और विछुए, पाँव के भी आप हैं ।
दिल में बसे बस आप है, औ नयन में भी आप हैं ।।
फिर क्या खता मुझसे हुई, जो आप ने बिसरा दिया ।
मैं तो हूँ दासी आपकी, औ आप हैं मेरे पिया ।।
जो चाहिए थे प्राण मेरे, मुझसे कह कर देखते ।
दे देती खुश हो कर तुम्हें, तुम खूब उन्हें सहेजते ।।

माता को छोड़ा पितु छुटे, आई तुम्हारे द्वार मैं ।
फिर कौन सा लांछन लगा, जो छोड़ती संसार मैं ।।
हे नाथ हूँ मैं आपकी, विनती मेरी सुन लीजिये ।
देते सजा किस बात की, यह तो निवारण कीजिये ।।

दो०- विकल नारि रोवे खड़ी, कौन सुने फरियाद ।
सब जग बैरी सम लगे, आई प्रभु की याद ।। (५०)

कण कण के वासी अविनासी, सुन लो मेरी अरदास प्रभो ।
जिन मातु पिता ने जन्म दिया, उनसे मिलवा दो आज प्रभो ।।
जिस जग को अपना समझा था, वह लगता मुझको सपना सा ।
है भीड़ मगर सब व्यर्थ मुझे, कोई ना दिखता अपना सा ।।
हा विधना वन को जाती मैं, कोई तो कह दे रुक जाओ ।
मेरी बिटिया मेरी प्यारी, तुम मुझे छोड़ कर मत जाओ ।।
यदि आ जाए मैया मेरी, तो गोदी में दुबका लेगी ।
रो रो कर मस्तक फोड़ेगी, कर चूमेगी मुख चूमेगी ।।

दो०- कब छूटी पति देहरी, कब वन में गई आय ।
पता न रानी को चला, रोवें हाय ही हाय ।। (५१)

रोते रोते है गला रुँधा, आंखों के आँसू सूख गए ।
अधरों की लाली गायब है, पग डगमग डगमग डोल रहे ।।
ना पता चला कब बैरी बन, पत्थर पैरों से टकराया ।
वह गिरीं उठी आंखे खोलीं, तब खुद को जंगल में पाया ।।
पगली सी घूर रही वन को, बृक्षों पत्तों जल्लादों को ।
फिर रोने लगीं याद करके, वे अगली पिछली यादों को ।।
कर जोड़ कहा जल्लादों से, क्यों खड़े मौन हो तुम भाई ।
ले लो खांडा निज हाथों में, और शीश काट दो मम भाई ।।

हा भाई क्यों तुम देर करो, क्यों देते मुझको पीड़ा हो ।
हा भाई मुझ दुखियारी की, अब खत्म करो तुम लीला को ।।

दो०- यह कह रानी ने इधर, लीना शीश झुकाय ।
जल्लादों ने भी उधर, ली तलवार उठाय ।। (५२)

तलवार नहीं वह बिजली थी, वह उठी हवा में लहराई ।
रानी का लहू चाटने को, नागिन सी नीचे को आई ।।
पर यह क्या शीश न काट सकी, रुक गई हवा में कुछ ऊपर ।
आ गया वधिक को चक्कर सा, सिर पकड़े बैठ गया भू पर ।।
जल्लाद उठा फिर हिम्मत कर, फिर से तलवार चलाई है ।
फिर से रुक गई हवा में वह, गर्दन तक पहुँच न पाई है ।।
वह बोला होठों होठों में, मेरे बस का यह कार्य नहीं ।
प्रत्यक्ष कहा दूजे से यह, भैया कर दो यह कार्य तुम्हीं ।।
हे भाई तुम ही वध कर दो, तलवार न मुझसे चलती है ।
यह राह मध्य रुक जाती है, गर्दन तक नहीं पहुँचती है ।।

दो०- दूजे ने तब यह कहा, क्या कायर हो आप ।
पहला वध कर रहे या, लगा किसी का श्राप ।। (५२)

क्यों खड़ग उठाते हाथ कंपे, क्या कर्म का तुमको ध्यान नहीं ।
क्या जीवित उनको समझ रहे, जिनकी विधि ने ही मृत्यु लिखी ।।
स्वामी का आज्ञा पालन ही, सेवक का धर्म कहाता है ।
फिर क्यों नहीं शीश काटते हो, क्या इनसे अपना नाता है ।।
नाता नाता नाता नाता, मत नाते की तुम बात करो ।
पहला बोला यों दूजे से, भाई मुझ पर मत बोझ धरो ।।
मैं नहीं मार सकता इनको, यह रानी ठगनी लगती है ।

जब से हाथों में आई है, भाई ही भाई कहती है ।
जब जब चेहरे पर नजर पड़े, यह मुझे बहिन सी दिखतीं है ।
फिर एक कत्ल की आज्ञा है, यह गर्भवती भी लगतीं है ।।

दो०- यह सुन दूजे ने कहा, भाई सत्य है बात ।
इनको यदि हम मारते, है दो का अपघात ।। (५३)

भाई यदि तुमने बहिन कहा, तो बहिन हमारी भी होती ।
मुझको भी भाई ही कहतीं, जब जब ये बहिना है रोती ।।
अतिएव कत्ल करना इनको, है मेरे बस की बात नहीं ।
चाहे शूली ही क्यों ना हो, मैं कर सकता हूँ घात नहीं ।।
इसलिए छोड़ दो वन में अब, इनको वस्त्रादिक लेकर के ।
सब भुगतेगे अपनी अपनी, जो पाप पुण्य है जीवन के ।।
मृग मार लहू से उसके ही, इनके वस्त्रों को रंग लेंगे ।
जब मृत्यु प्रमाणित करनी हो, तब नृप के सम्मुख रख देंगे ।।

दो०- कर्मजली के भाग्य में, है यह नया प्रभात ।
वधिकों ने कर जोड़कर, उसे नवाया माथ ।। (५५)

जिस जीव का जीवन बाकी हो, उसको ना आती मृत्यु सखे ।
किसकी ताकत जो बदल सके, वो ब्रह्म लिखा प्रारब्ध सखे ।।
जो वायु में है जो जल में है, जो प्रभु व्यापक है कण कण में ।
मंझा के प्राण बचाने वो, आये जल्लादों के मन में ।।
थी वधिकों की वलिवेदी पर, अब बहिन बनाया क्षण भर में ।
उस नटवर नागर नन्दा ने, करतब दिखलाया क्षण भर में ।।
अब शीश झुका जल्लाद कहें, हे बहिना दे दो वस्त्रादिक ।
जाओ अब भाग्य सहारे पर, ना आना निषद राज्य में फिर ।।

दो०- सोच रहीं मंझा खड़ी, वाह त्रिलोकी राज ।
प्राण बचाये, ले रहे, पुनः परीक्षा आज ।। (५५)

इससे अच्छा तो मर जाती, यह और परीक्षा जटिल हुई ।
पर पुरुष भले ही भाई हैं, क्या इनके सम्मुख नगन हुई ।।
लाज शर्म पतिव्रता धर्म, यदि खो जाये तो जीवन क्या ।
या धर्म मार्ग से पैर डिगें, या पाप लगे वह जीवन क्या ।।
प्रत्यक्ष कहा जल्लादों से, भाई यह कठिन परीक्षा है ।
मैं कैसे वस्त्र विहीन बनूँ, इससे मर जाना अच्छा है ।।
भाई हो मेरे धर्म के तुम, पर धर्म मेरा कुछ और भी है ।
यदि पतिव्रत धर्म भुलाऊंगी, ना मुझे ठौर उस लोक भी है ।।
भाई कुछ ऐसा बतलाओ, जो मेरा धर्म भी ना जाये ।
तुम भी पा जाओ वस्त्र मेरे, औ मेरी लाज भी रह जाये ।।

दो०- जल्लादों ने यों कहा, बहिना सही विचार ।
मैं भी ना चाहूँ कभी, बिगड़े धर्म तुम्हार ।। (५७)

अतिएव सुनो बहिना मेरी, तुम ऐसा एक उपाय करो ।
हो जाओ जल के मध्य खड़ी, फिर अपने वस्त्र उतार धरो ।।
मैं ले जाऊंगा वस्त्रों को, और अपना कार्य बनाऊँगा ।
तुम तन ढक लेना जल से ही, तब मै भी देख न पाऊँगा ।।
अब जल का आँचल ही बहिना, इस वन में लाज बचाएगा ।
तुम वस्त्र किसी से ले लेना, कोई तो वन में आएगा ।।
वो देखो ताल दीखता है, आओ चलते उस ताल पे हम ।
क्या करूँ बहिन मजबूरी है, किसको बतलाऊँ अपना गम ।।

दो०- वेबस हो रानी चली, गई ताल के पास ।
जल में परछाई लखे, लेकर गहरी स्वांस ।। (५८)

जो फूलों से भी कोमल थी, वनिता थीं राज घराने की ।
यों भाग्य सताता रहा उन्हें, हद हो गई आज सताने की ।।
अपने कर से अपनी वेंदी, अपनी पायल और कंगन को ।
रख दिये उतार जमीं पर सब, फिर हाथ बढ़ाया कुंडल को ।।
यह देख कहा जल्लादों ने, बहिना ना इन्हें उतारो तुम ।
कुंडल नथुनी और बिछुओं को, पति हेतु बहिन हे धारो तुम ।।
इनको न उतारो और सुनो, बस देना वस्त्र वही मुझको ।
जो भाई ले ले हाथों में, ना देते शर्म लगे तुमको ।।
हम दोनों जाते दूर चले, ऐ बहिना जल की आड़ करो ।
तुम दे देना आवाज हमें, जब अपने वस्त्र उतार धरो ।।

दो०- वस्त्राभूषण रख दिये, बाहर जल में जाय ।
बुला लिए जल्लाद जो, ले गए वस्त्र उठाय ।। (५९)

हीरे मोती और मणियों के, आभूषण रहते जिस तन पर ।
वह अधोवस्त्र में खड़ी यहाँ, आश्रित होकर जल पर वन पर ।।
हाँ जिनके एक इशारे पर, दौड़े आते रक्षक पल में ।
वह पत्तों की भी खड़कन से, डरकर छुप जाती है जल में ।।
रानी यहाँ भाग्य सहारे हैं, हम चलते अभी वहाँ पर हैं ।
मृग के लोहू से रंगे वस्त्र, ले जाते वधिक जहां पर हैं ।।
धीरे धीरे चलते चलते, ऐसे बतलाते वे जाते !
कैसे बोलोगे झूठ वहाँ, हे भाई राजा के आगे ।।
यदि कभी भविष्य में रानी को, राजा जी सम्मुख देखेगे ।
तो हम तुमको हे भाई वो, बिन सोचे फांसी दे देंगे ।।

दो०- अपनी अपनी जान की, सबको है परवाह ।
पशु पक्षी या कीट हो, या हो वह नरनाह ।। (६०)

पर कुछ ऐसे भी होते हैं, ना अपनी जो परवाह करें ।
परहित जनहित के लिए मित्र, प्राणों को अपने स्वाह करें ।।
ऐसे लोगों को यह समाज, कहता है संत श्रेष्ठ उनको ।
दाता भी देता स्वर्ग लोक, घर घर पूजा जाता उनको ।।
पर वे बेचारे क्या जानें, जिनका जल्लादी पेशा हो ।
ना सुने वचन हो शास्त्रों के, ना संतों का संग देखा हो ।।
वे प्राण दान देकर आए, ये उन्हें समझ ना आया है ।
कैसे हो जाएगा अनहित जब पहले पुण्य कमाया हैं ।।
डरते डरते दरबार में वे, पहुँचे ठिठके फिर खड़े हुये ।
राजा थे सिंह समान उन्हें, वे बकरी सम थे डरे हुये ।।

दो०- वस्त्रादिक को रख दिया, सिंहासन ढिंग जाय ।
लहू से लथपथ देखकर, नृप मुख निकली हाय ।। (६०)

नृप के नेत्रों से झरे अश्रु, और वस्त्रों पर जाकर के ठहरे ।
जैसे अंतिम श्रद्धांजलि को, आई हो गंगा की लहरें ।।
कुछ पल बीते ये युग समान, फिर जल्लादों पर नजर गई ।
मंत्री मण्डल के चेहरे से, होते पंडित पर नजर गई ।
कहते चोरों की दाढ़ी में, तिनके होते हैं बड़े बड़े ।
कुछ भी ना पूछो जानो मत, फिर भी वो काँपे खड़े खड़े ।।
उन अश्रु भरी नजरों से भी, ना नजर मिलाई थी अपनी ।
जल्लादों पंडित तीनों ने, बस नजर चुराई थी अपनी ।।

दो०- ऊंचे नीचे कर्म का, मृत्यु पर्यन्त है भोग ।
जिन नेत्रों पानी मरा, कब जिन्दा वह लोग ।। (६२)

राजा कुछ बोलें पहले ही, जल्लादों ने यह कह डाला ।
हे राजन जो कुछ कार्य दिया, वह सब मैंने है कर डाला ।।

पर मन में शांति नहीं मेरे, है क्षोभ ग्लानि से भरा हुआ ।
देवी सी रानी को काटा, सिर देखा भू पर पड़ा हुआ ।।
अतिएव क्षमा करिए स्वामी, मैं यहाँ न अब रह पाऊँगा ।
प्रातः होते ही हे राजन, मैं देश छोड़कर जाऊँगा ।।
तब बंधा था मैं राजाज्ञा से, अबला पर अस्त्र उठाया है ।
जाने क्या दोष दिखा सबको, मैंने तो दोष न पाया है ।।
हो सकता पंडित की बाणी, हो सत्य पोथियाँ पढ़ते है ।
पर मैंने कोई भी नारी, ना देखी डायन बनते है ।।

दो०- यह सुन पुरोहित को हुई, अपने अन्दर ग्लानि ।
निज स्वार्थवश ही मैंने, ली मंझा की जान ।। (६३)

जल्लाद लगाते दोष उन्हें, वो मन ही मन में सोच रहे ।
जो पाप हो गया स्वारथवश, उसके भले अब कोंच रहे ।।
वो सोच रहे क्यों झूठ कहा, इन सीधे साधे राजा से ।
ना हो जाता यह जग खाली, जो उठ जाता मैं इस जग से ।।
अपना परिवार बचाने को, सब प्रजा को धोखा दे डाला ।
यह लोक कर लिया है काला, वह लोक हो गया भी काला ।।
प्रत्यक्ष कहा राजा से यों, रानी बेटी सम थी मेरी ।
मैं फंसा ग्रहों की चालों में, ना इसमें गलती थी मेरी ।
फिर भी अब मुझको दोष लगे, धिक्कार मेरे वृद्धापन को ।
इसलिए रहूँगा नहीं यहाँ, जाऊंगा बस तीर्थाटन को ।।

दो०- पुरोहित औ जल्लाद के, सुनकर ये संवाद ।
राजा यों कहने लगे, होकर अधिक उदास ।। (६४)

जिसके मन जो है वही करो, जाओ पंडित तीर्थाटन को ।
जल्लादों जाओ देश छोड़, पर नहीं बढ़ाओ अब गम को ।।

जाने वाली तो चली गई, मेरे विवेक पर पत्थर थे ।
डायन बनती वो तब बनती, नौ माह तो रह सकती घर पे ।।
हो सकता तब तक यह होता, ग्रहों की चाल बदल जाती ।
मेरी भी वंश बेल बढ़ती, रानी भी जिंदा रह पाती ।।
वे जहां गईं मै भी जाता, मंत्रियो छोड़ रजवाड़े को ।
यह कहकर राजा ने अपने, कर मध्य उठाया खाड़े को ।।
यह देख मंत्री दौड़े सब, पल में वहाँ हाहाकार हुआ ।
दौड़ो दौड़ो खांडा पकड़ो, वरना जीवन बेकार हुआ ।।

दो०- सभासदों ने दौड़कर, खांडा पकड़ा जाय ।
राजन को समझा रहे, सिंहासन बैठाय ।। (६५)

हे राजन यह क्या हुआ उसे, जो स्वयं विवेकी ज्ञानी है ।
ना जाता साथ चला कोई, यह दुनिया आनी जानी है ।।
अपघात करेंगे स्वयं आप तो, पाप लगे हे नृप भारी ।
हम सब हो जायेंगे अनाथ, हो जाये जनता की ख्वारी ।।
अतिएव धार कर धीरज को, कर्तव्य पे अपने ध्यान धरो ।
जनता से नाथ को ना छीनों, हे राजन यह उपकार करो ।।
जल्लादों पुरोहित तुम जाओ, भूले की याद दिलाओ ना ।
क्यों इनके दुख को बढ़ा रहे, खूँ रंगे वस्त्र हटाओ ना ।।

दो०- तीर्थाटन को चल दिए, इधर पुरोहित राज ।
देश छोड़कर जा रहे, वो देखो जल्लाद ।। (६६)
दो०- यहां की बातें छोड़कर, चलिए मंझा पास ।
खड़ी अकेली ताल पर, प्रभु पर कर विश्वास ।। (६७)

मंझा सोचें वन मध्य खड़ीं, कैसी विपदा प्रभु ने डाली ।
इस जग में प्राणी लाखों हैं, पर मुझको लगता है खाली ।।

सोचा जाऊँ मैं पीहर को, फिर सोचा कैसे जाऊँगी ।
हूँ इतनी बुरी अवस्था में, सब पूछे क्या बतलाऊँगी ।।
अतिएव रहूँगी उसी तरह, जिस तरह रखेगा प्रभु मेरा ।
यह सोच के रानी मंझा ने, इक वृक्ष तले डाला डेरा ।।
पर चिंतित सी वह देख रहीं, चौतरफा नजर घुमा के अब ।
मैं अर्धनग्न बैठी हूँ यहाँ, कहीं देख न ले कोई आके अब ।।
यदि कोई अचानक आ निकला, तो मैं कैसे लाज बचाऊँगी ।
जल भी है मेरे दूर तनिक, उस तक भी पहुँच न पाऊँगी ।।

दो०- मानव की संवेदना, जाती जड़ता लील ।
पशु-पक्षी रहते मगर, सदा संवेदन शील ।। (६८)

जिस वृक्ष तले रानी बैठीं, ऊपर तोते का जोड़ा था ।
देखी अनजानी नारि दुखी, फिर उनको भी दुख थोड़ा था ।।
तोते से बोली यों तोती, ऐ पिया क्यों ये नारी रोती ।
ना कुछ खाती ना पीती कुछ, ना जाग रही है ना सोती ।।
आई है अपने वनों मध्य, इसलिए अतिथि ये अपनी है ।
डालो दो-चार फलों को तुम, अब क्षुधा मिटा ले अपनी यह ।।
हम नहीं स्वार्थी मानव से, पिजड़े में करता बंद हमें ।
यदि क्षुधा लगे खा भी जाता, ना रहने दे स्वच्छन्द हमें ।।
है भले मानवी पर साजन, है कसम तुम्हें तुम मदद करो ।
बुलवा लो अपने मित्रों को, जो बने वो इनकी मदद करो ।।

दो०- भूमि मिले आकाश में, गगन भूमि मिल जाय ।
प्रेम भरा त्रिय का कहा, कब पति से टल पाय ।। (६९)

हो रहा वही वन मध्य आज, जो कुछ चाहा था तोती ने ।
आ गये कबूतर मोर आदि, आ पूँछा चिड़िया छोटी ने ।।

क्यों बुलवाया तोते भाई क्या, पड़ी मुसीबत तुम पे है ।
तोता बोला नीचे देखो, वह दुखिया पीड़ित गम से है ।।
तोती मेरी यह चाह रही, तुम सब मिल ऐसा यत्न करो ।
गम मिट ना पाये यदि उनका, कुछ कम हो ये प्रयत्न करो ।।
तोते से बोला काग एक, भइया यह बात पुण्य की है ।
यदि किसी दुखी की मदद करो, तो मिलती राह स्वर्ग की है ।।
हममें से कुछ जाते भइया, लाने मीठे-मीठे फल को ।
बाकी पंखों से छांव करें, ना धूप लगे उनके तन को ।।
है शक्ति मान यह हवावील, और गिद्ध चील या बाज सभी ।
इनकी रक्षा को तत्पर हों, यदि देखे आहट अभी-कभी ।।
कोयल गाये मीठे स्वर से, यह मोर नृत्य दिखला दें कुछ ।
बुलबुल भी तान सुरीली से, उनके मन को बहला दे कुछ ।।

दो०- कुछ खग लाये फलों को, कुछ ने कीन्हीं छांव ।
बुलबुल, कोयल गा रही, ठुमके मोर के पांव ।। (७०)

जो खग जिस फन में माहिर थे, वो अपनी कला दिखाते हैं ।
ऐ इंसानों आँखें खालो, ये पक्षी कुछ सिखलाते हैं ।।
कहते परमारथ काम आउ, है जीवन दर्शन सही यही ।
वो देखो छोटी गौरैया, रानी की गोद बैठ गयी ।।
कर पर बैठी कंधे बैठी, गालों में चोंच चुभाती है ।
जैसे कहती हो मत रोओ, यों रानी से इठलाती है ।।
रानी का मन भी कुछ बहला, पक्षियों ने करतब दिखलाये ।
वह उठी और आँसू पोछे, पक्षियों के लाये फल खाये ।।
यह देख चहचहाने पक्षी, जगंल में खग ध्वनि थी भारी ।
श्रम सफल हुआ हम सफल हुए, गाये सोना मैना सारी ।।
इक दिन बीता दो दिन बीते, अब दिवस तीसरा आया है ।
रानी को कुछ ना पता चला, यों खगों ने उन्हें लुभाया है ।।

दो०- रानी सोवें वट तले, बैठा वृक्ष कपोत ।
अश्वारोही देख कुछ, आ बैठा वह गोद ।। (७१)

सब खगों को उसने बतलाया, भइया आते घोड़े वाले ।
इस दुखिया की निद्रा तोड़ो, निज तन को जल से ढक डाले ।।
यह सुनकर सभी पक्षियों ने, मिलकर के शोर मचाया है ।
मंझा ने आँखें जब खोली, तब उड़-उड़ कर बतलाया है ।।
वे उसी दिशा में उड़ते हैं, जिस दिशा से घोड़े आते हैं ।
फिर आते फिर वे उड़ जाते, श्रम करते शोर मचाते हैं ।।
रानी कुछ चौंकी सजग हुई, फिर कान लगा कर सुनतीं हैं ।
आते घोड़ों की टापों की, ध्वनि उनके कानों पड़ती है ।।
वो दौड़ के जल में जा पहुँची, मन खुश था कोई तो आया ।
पर भले-बुरे कैसे होंगे, यह सोच के दिल भी घबराया ।।

दो०- इतने में आते दिखे, उनको अश्व सवार ।
मुझ दुखिया को मदद दो, कहा पुकार-पुकार ।। (७२)

आ जाय जवानी में बचपन, वृद्धावस्था में तरुनाई ।
होती तब खुशी किसी को जो, वैसी ही रानी को छाई ।।
यह अश्वारोही नहीं उन्हें, थे नये भाग्य के उदय-अस्त ।
जैसे प्यासे को जल कण की, दो-चार बूँद सागर-समस्त ।।

पर चिंता थी जो आते हैं, ना पता कि होंगे सज्जन या ।
हो सकता चोर लुटेरे हो, क्या पता चले उनके दिल का ।।
जो होगा देखा जायेगा, सब सज्जन ना सब दुर्जन ना ।
यह सोच कहा कुछ ऊँचे स्वर, मुझ पर दुख डाला है विधना ।।
ऐ जाते अश्व सवारों तुम, इक नजर इधर भी देखो तो ।
किस्मत की मारी मैं दुखिया, मुझे अपने साथ में ले लो तो ।।

दो०- जिसका दिल मरुभूमि ना, या है ना पाषाण ।
आर्तनाद कानों पड़े, लगे हृदय जस बाण ।। (७३)

उन अश्वारोही के कानों, जब दर्द भरी आवाज पड़ी ।
क्या कहूँ सवारों की हालत, हो गई सवारी वहीं खड़ी ।।
जैसे हो घोड़े कहते यह, स्वामी आगे ना जायेंगे ।
है नारि दुखी वन में कोई, दुख मिटा के पुण्य कमायेंगे ।।
खींचे लगाम को घुड़सवार, पर अश्व न रोके रुकते हैं ।
जिस ताल मध्य में मंझा है, उसके तट निकट ठिठकते हैं ।।
जंगल था निर्जन वियाबान, फिर अद्‌भुत वहाँ नजारा था ।
था ताल मध्य इक नारि शीश, पक्षियों से घिरा किनारा था ।।
इत खगों की ध्वनि उत रोता सिर, यह देख पथिक सब शीत हुए ।
यह जादू है या माया है, यह सोच-सोच भयभीत हुए ।।

दो०- एक कहे यदि नारि यह, ना माया का खेल ।
क्यों धड़ दिखता ना हमें, दिखता शीश अकेल ।। (७४)

यदि नारी कोई दुखिया है, तो निकल के जल से आये ना ।
दूजा बोला सब भाग चलो, कहीं आकर सब को खाये ना ।।
नारी होती जन में होती, इस निर्जन में है काम नहीं ।
यह निश्चित यक्षी माया है, साथी भी होंगे यहीं कहीं ।।
इतने में पगड़ीबन्द युवक, इक बढ़कर आगे को आया ।
बोला मैं करता बात अभी, देखूँ नारी है या माया ।।
यह कहता बोला रानी से, ऐ नारी तू है कौन बता ।
क्यों जल के मध्य बिराज रही, है कहां का तेरा अता-पता ।।
क्यों उड़ते ऊपर पक्षी यह, क्या इनसे तेरा नाता है ।
क्यों आई है तू वनों मध्य, जहां कोई न आता जाता है ।।

दो०- मानव गुण धन से बड़े, प्रभु ने दिए गहाय ।
साहस, धीरज निपुणता, से विपदा टल जाय ।। (७५)

रानी बोली ऐ युवक सुनो, मैं एक पतिव्रता नारी हूँ ।
मेरा ईश्वर मुझ से रूठा, इसलिए विपति की मारी हूँ ।।
रीझा पति एक नर्तकी पर, अतिएव मुझे ठुकराया है ।
गए मातु पिता तीर्थाटन को, घर वार भी बेच बहाया है ।।
मैं मदद मांगने गई जहां, उनकी नीयत में खोट दिखी ।
निज पतिव्रत धर्म बचाने को, बस जंगल की ही ओट दिखी ।।
जाने कितने दिन बीत गए, इस वन में मुझको याद नहीं ।
फट गये वस्त्र मेरे सारे, हैं तन पर पूरे वस्त्र नहीं ।।
इसलिए छुपी हूँ ताल मध्य, निर्वस्त्र न आ सकती बाहर ।
ये पक्षी ही लाकर देते, फल मुझको मुझ पर करूणा कर ।।

दो०- और सुनो युवक व्यथा, गर्भवती मैं नारि ।
दुख भोगूँ ता उम्र पर, अपयश ना स्वीकार ।। (७६)

यदि आप लोग स्वीकार करें, भइया मुझको अच्छे मन से ।
तब तो मैं बाहर आऊँगी, वरना भेटूँगी इस जल से ।।
मैं गुन मानूँगी जीवन भर, भइया जो मदद करोगे तुम ।
वरना तज दूँगी प्राण यहीं, जो बुरी नजर देखोगे तुम ।।
यह सुनकर युवक यों बोला, मैं हूँ ना नीच घराने का ।
शुभ घड़ी मुझे भेजा प्रभु ने, यह समय है पुण्य कमाने का ।।
तू दुखिया अबला नारी है, मैं तुझको बहन मानता हूँ ।
भाई बनकर ऐ दुखियारी, रिश्तों की डोर बाँधता हूँ ।।
रिश्ते ना बनते परिचय बिन, इसलिए तू परिचय जान मेरा ।
मैं लच्छूमल हूँ जाति बणिक, और दक्षिणपुर है ग्राम मेरा ।।

दो०- मेरी पगड़ी ले बहिन, ढकिए तन को आप ।
जल से बाहर आइए, चलिए मेरे साथ ।। (७७)

मैं मानव हूँ पशु नहीं बहिन, तुमने अब तक जिनको देखा ।
नर वेश बनाकर छुपे हुए, तुमने नर पशुओं को देखा ।।
पर मैं हूँ बहिना व्यापारी, यह भी व्यापार करूंगा मैं ।
करके तेरी सेवा रक्षा, उस प्रभु से पुण्य को लूंगा मैं ।।
इस से बढ़कर है लाभ कहां, कितना अच्छा वह दिन होगा ।
मैं ढोल बजाकर नाचूँगा, जब मेरे घर भानज होगा ।।
यह शब्द नहीं थे अमृत थे, रानी को जीवन मिला नया ।
वह ओढ़ पाग बाहर आईं, डर भी मन से सब निकल गया ।।
बोली मैं बहिन तुम्हारी हूँ, तुम मेरे भाई हे भाई ।
है अजब खेल उस नटवर का, मैं थाह न उसकी ले पाई ।।
वह दुख देता सुख भी देता, सुख देता दुख को हर लेता ।
गैरों को अपना कर देता, अपनों को सपना कर देता ।।

दो०- कुछ पल तक उठती रही, तरह-तरह की बात ।
पर लच्छूमल चल दिए, ले मंझा को साथ ।। (७८)

मंजिल मंजिल करते करते, वो पहुँच गए दक्षिणपुर में ।
राहों गलियों को पार किया, जा पहुंचे वे अपने घर में ।।
कैसे कह दूँ मैं भवन उसे, अम्बर छूता वह बंगला था ।
दिखलाता ठाठ रईसी के, महलों से बढ़कर बंगला था ।।
लच्छूमल अपने बंगले में, ले पहुंचे साथ में रानी को ।
फिर निज पत्नी को बतलाया, दुखिया की दुखद कहानी को ।।
वे बोले अपनी पत्नी से, बतलादो दास दासियों से ।
ये हैं मेरी अब धर्म बहिन, बस यहीं रहेंगी यह अब से ।।
यह सुन सेठानी सकुचानी, अपने मन में यह सोच रही ।

होते भँवरे है मर्द सभी, कब फिसल जाएँ क्या जात कही ।।
अच्छा है बहिन मानते ये, पर इस नारी की सुंदरता ।
हैं यहाँ हजारों से बढ़कर, मोहेगी मन यह बुत तक का ।।

दो०- पत्नी यदि शंकालु हो, शंका मिटती नाहिं ।
गर्म तवे पर बैठ पति, चाहें कसमें खाय ।। (७९)

जग में जितनी है मर्द जाति, खुद को होशियार समझती है ।
स्त्री रहती खामोश सदा, पर इन्हें नचाया करती है ।।
सेठानी बोली सेठ सुनो, यह दुखिया है बेचारी है ।
अच्छा है इनको ले आए, अब से यह ननद हमारी है ।।
मैं इनकी सेवा को तत्पर, दिल में है मेरे पाप नहीं ।
पर यह समाज जब जानेगा, रह सकता है चुपचाप नहीं ।।
है बहिन तुम्हारी अति सुंदर, कोई इनको यदि देखेगा ।
ना समझेगा नाता रिश्ता, तुम पर आक्षेप लगायेगा ।।
यदि हवन को करते हाथ जले, तो ऐसे हवन को करना क्या ।
यदि अपना धर्म बिगड़ता हो, तो पुण्य की बांह पकड़ना क्या ।।
इसलिए रखो मत साथ इन्हें, वनवा दो अलग ठिकाना तुम ।
भिजवा दो दास दासियों को, कम रखना आना जाना तुम ।।

दो०- पत्नी जाल लगाय के, रखे शिकारी रूप ।
कब बेचारा पति फंसे, ना जाने सुर भूप ।। (८०)

पत्नी जब वाक बाण छोड़े, ना बच पाते हैं इंद्रादिक ।
ये तो साधारण बनिया है, ना बच पाये थे दशरथ तक ।।
हो रहा यहाँ भी वही कार्य, जो सेठानी ने है समझाया ।
लच्छूमल ने व्यापार हेतु, था बांसो का वन लगवाया ।।

था नाम जगह का हीस विरे, वहाँ सुंदर भवन बना भारी ।
रहते लच्छूमल कभी कभी, या ठहरा करते व्यापारी ।।
मानव दिखता ना आसपास, पक्षी कलरव ध्वनि करते थे ।
बांसो के झुरमुट मध्य वहाँ, बस सर्प ही टहला करते थे ।।
एकान्त जान लच्छू बनिया, रानी को वहाँ पर ले आए ।
भिजवा दी दास दासियाँ कुछ, खाद्यान आदि भी भिजवाए ।।
फिर बोले रानी से बहिना, तुम रहो यहाँ पर निश्चित हो ।
तुम बुलवा लेना तुरत हमें, यदि कष्ट यहाँ पर किंचित हो ।।

दो०- रानी को यह बांस भी, थे कदली के पात ।
भूखे को रुचिकर लगे, ज्यों कोदों का भात ।। (८१)
सर्पों से हुई मित्रता, खगों से जान पहचान ।
दुख की बदली भी छटी, समय हुआ वलवान ।। (८२)

वह वियाबान गुलजार हुआ, रहती है जहां पर सुकुमारी ।
आषाढ़ बीत गया महलों में, श्रावण में वनों में बेचारी ।।
लखि आसमान में काले घन, रानी मन रोक न पाई है ।
पपीहा की पियू पियू सुनकर, कुछ याद पिया की आई है ।।
घन गरज रहे वह लरज रहीं, घन बरस रहे वह झुलस रहीं ।
तन भीग रहा मन अग्नि लिए, रानी सावन को कोस रहीं ।।
बर्षा की तुच्छ फुहारें भी, रानी को तीर समान हुई ।
तन थर्राया दिल घबराया, वह जान रहीं अब जान गई ।।
वह यहाँ नहीं वह वहाँ नहीं, पति दूर नहीं पति पास नहीं ।
है पिया मिलन में खोई वो, तन में दिखती है श्वांस नहीं ।।

दो०- प्रेम परोसे प्रभु मिलै, वैरी हुइ जाइ मित्र ।
दूर स्वजन नैनन दिखै, ऐसो प्रेम विचित्र ।। (८३)

प्रेम पियासे प्रभु प्यारे, पग पनही बिन दौड़े आते ।
फिर प्रेम भरे रानी नैना, क्यों पिया के दर्शन ना पाते ।।
पर यह दर्शन दर्शन ही था, दर्शाता दशा देह की है ।
कुछ नूपुर ध्वनि जब कान पड़ी, टूटी जो लड़ी नेह की है ।।
ना पिया मिले ना प्यास बुझी, ना शोलों की बरसात रुकी ।
कुछ रथों पालकी रब्भों में, जातीं रानी को नारि दिखीं ।।
बैलों के गले के घुंघुरू की, ध्वनि रुनझुन रुनझुन आती है ।
है संग सहेली भी उनके, जो ढोल पे कजरी गाती है ।।
कोई भाई को मना रही, कोई बाबुल को बुला रही ।
कोई सावन के झूलों के, गीतों को गाकर सुना रही ।।

दो०- चंगे को चंगा लगे, हंसी ठिठोली गान ।
मन विषाद परिपूर्ण तो, गर्म तेल ज्यों कान ।। (८४)

यह गीत नहीं थे भाले थे, रानी के चुभे हृदय में जा ।
मन बोला अंदर से सावन, में बेटी घर बाबुल के जा ।।
है तीजों का त्योहार बड़ा, और रक्षाबन्धन सिर पर है ।
बाबुल के घर झूले बिटिया, झूला क्या इस से बढ़कर है ।।
यह जातीं नारि राह में जो, सब बाबुल के घर जातीं हैं ।
मैं पड़ी अकेली वियावान, इस कारण मुझे चिढ़ाती हैं ।।
रानी सोचे मन अपने में, मैं भी जाऊँगी बाबुल के ।
वहाँ इतना झूला झूलूंगी, अरमान मिटा लूँगी मन के ।।
माता मेरी व्याकुल होगी, उनसे भी भेटूँगी जाकर ।
बाबुल भी खुश हो नाचेगे, इस खोई बेटी को पाकर ।।
पर कैसे जाऊँ बाबुल घर, मैं डायन बनने वाली हूँ ।
वो तो हैं मेरे मातु पिता, मैं जग को छलने वाली हूँ ।।

दो०- यह विचार जब मन उठे, करने लगी विलाप ।
हाय विधाता क्यों दिया, तूने ऐसा श्राप ।। (८५)

रानी रोवे हो जार जार, ना कोई वंधावे ढाढ़स को ।
क्या करेगा जुगुनू वेचारा, हो घोर अंधेर अमावस को ।।
फिर भी परमारथ के कारण, जुगुनू टिमटिम टिमटिम चमके ।
वह मन में अपने भटके को, दिखलाता रस्ता लौ बनके ।।
रानी की घोर अमावस में, लच्छूमल आए जुगुनू से ।
लाये हैं रेशम डोर एक, जो सजी हुई है घुंघरू से ।।
हीरे मोती से टकी हुई, हाथों में स्वर्ण पटुलिया है ।
आते ही पूछा दासों से, क्यों रोती बहिन पगलिया है ।।
दासों ने तब कर जोड़ कहा, हम नहीं जानते है स्वामी ।
बस इतनी विनती करते है, ना सेवा में कोई खामी ।।

दो०- भ्रात गए बहिना निकट, बोले बैन सुनाय ।
मत रो, बहिना हो खड़ी, दूँ झूला झुलवाय ।। (८६)

आया है तेरा यह भाई, लाया है डोरी पटुली को ।
अपने हाथों से झुलवाऊँ, झूला मैं प्यारी पगली को ।।
क्या दुख है तुमको रोती जो, क्या कष्ट दिया कुछ भैया ने ।
या सर्पों से डर लगता है, या काटा किसी ततैया ने ।।
जो जगह तुम्हें ना भायी यह, तो दूजा मैं निर्माण करूँ ।
यदि कहा किसी ने कुछ हो तो, बतलाओ जाकर प्राण हरूँ ।।
रानी बोली तब ना भैया, ना भैया ऐसा कुछ भी ना ।
मेरे स्वजनों ने जहर दिया, वो केवल मुझको है पीना ।।
तुम वैठो पीढ़ा डाल रही, मैं लाती हूँ पानी तुमको ।
आए है दूर से थके हुये, कम करें आप अपने श्रम को ।।

दो०- कुछ पल कर विश्राम फिर, डाले झूला डार ।
झुला रहे लच्छू बणिक, झूले मंझा नारि ।। (८७)

वह झोंटा देते हाथों से, वह हँस हँस पींग बढ़ाती हैं ।
ये अपने है कि पराए है, मंझा यह समझ न पाती है ।।
लखि प्रीति भूल गई बाबुल को, लच्छू जी सहोदर से दिखते ।
वे सोचें लाती चार अगर, अस भाई हाटों में बिकते ।।
भाई भी प्रेम पियासे है, बस झोंटा देते जाते हैं ।
इतने में लच्छू बनिया के, इक मित्र वहाँ पर आते है ।।
वे तेल के इक व्यापारी थे, रघुधन तेली था नाम पड़ा ।
दस दस कोल्हू के मालिक थे, व्यापार था उनका बड़ा चढ़ा ।।
हो मित्र धनिक का धनिक नहीं, यह बात दूर कि कौड़ी है ।
नाता रिश्ता व्यापार युद्ध, सब बराबरी की जोड़ी है ।।

दो०- प्रीति, दुश्मनी, नात या, करना हो व्यवहार ।
खोज करो सम से अगर, क्यों पछताओ यार ।। (८८)

लच्छू की झूले से हटकर, उन आगन्तुक पर नजर गई ।
बोले आओ क्यों ठिठक रहे, है बहिन हमारी गैर नहीं ।।
श्रावण का पुण्य मास होता, है बहिनों का शिवशंकर का ।
दोनों की सेवा से तरता, नर भाव स्वच्छ हो यदि मन का ।।
अतिएव मित्र तुम भी आओ, दो झोंटा दे दो झूला में ।
कुछ पुण्य नगों को गढ़वा लो, इस जीवन नीर बवूला में ।।
जब धर्मराज के यहाँ मित्र, एक दिन हम दोनों जाएगे ।
तो ये झोटे भी वहाँ मित्र, सद गिनती में आ जाएगे ।।
यह सुन रघुधन आगे आए, कुछ समझे कुछ ना समझे वो ।
लच्छू की बहिन हमारी है, यह सोच दे दिये झोटे दो ।।

दो०- पिय छूटे, बाबुल छुटे, जिनके एकु न भ्रात ।
प्रभु लीला है अटपटी, द्वि द्वि भ्रात झुलात ।। (८६)

लखि प्रेम बहिन और भाई का, झूमें पक्षी और बृक्षादिक ।
बांसो से बजी बांसुरी तो, हो मगन झूम रहे सर्पादिक ।।
कब गई दुपहरी शाम हुई, उन तीनों को ना पता चला ।
तन्द्रा टूटी नभ में आया, जब चन्द्र साथ ले चन्द्रकला ।।
इस तरह से बीते कई दिवस, फिर रक्षा बन्धन भी आया ।
जग में ऐसा है कौन भ्रात, जिसको यह दिन है ना भाया ।।
लच्छू और रघुधन दोनों ने, मंझा से राखी बँधवाई ।
कुछ नेग न्योछावर दे करके, रक्षा की कसमें भी खाई ।।
हो बहिन सहोदर मंझा दे, दोनों ने वह स्थान दिया ।
कर्तव्य भ्रात के पूर्ण किए, फिर निज गृह को प्रस्थान किया ।।

दो०- सावन भादों ताल औ, नदियां लेइ उफान ।
हरियावे सब वनस्पति, झुलसे बिरहिन प्राण ।। (९०)

सावन तो बीता भाई संग, भादों में बर्षा थी भारी ।
रानी को बैरिन रात लगे, डरपावे मन को अंधियारी ।।
करवटें बदलती बिस्तर पर, सिलवटों की गिनती कौन करे ।
खटकाये द्वार पवन बैरी, वे समझे प्रीतम द्वार खड़े ।।
पर पिया कहाँ है हिया वहाँ, इसलिए है लगता पिया यहाँ ।
यदि लिखा अंधेरा हो प्रभु ने, उसकी किस्मत में दिया कहाँ ।।
उस भोली गोरी सूरत को, भादों ने काला कर डाला ।
जैसे की श्वेत गुलाबों को, मारा हो जाड़े ने पाला ।।
कैसे बीती बरसात उन्हें, यह तो उनका मन ही जाने ।
जहरीले सर्पों से बचना, तो शीतल चन्दन ही जाने ।।

दो०- बीत गया है भाद्रपद, बीता आश्विन मास ।
ले दीवाली पर्व को, आया कार्तिक मास ।। (६१)

आई दीवाली मनभावन, लेकर के दीपों की अवली ।
पर वे घर वे नर नारी तो, होती कपास बिन ज्यों तकली ।।
दीवाली पर लक्ष्मी पूजन, पति पत्नी मिलकर करते है ।
क्षय हो जाता है दुख दरिद्र, धन धान्य कीर्ति यश पाते हैं ।
पर यहाँ दीप है महलों में, और बाँस वनी में बाती है ।
घृत तीन माह का कोख मध्य, फिर क्यों दीवाली आती है ।।
पर काल चक्र की गति ऐसी, जो रोके ना रुक सकती है ।
चलती रहती चलती रहती, चलती रहती ना थकती है ।।
या सुख आए या दुख आए, या दुख जाये या सुख जाये ।
ना इससे मतलब इसको कुछ, कोई आए कोई जाये ।।
रानी सोचे ना आए अब, ये भैया द्विज दीवाली भी ।
पर नहीं रुकी बैरिन बनके, आ गई अमावस काली भी ।।

दो०- ज्वर से तपते व्यक्ति को, कैसे आग सुहाय ।
शोक ग्रसित मन हो अगर, कैसे फाग सुहाय ।। (६२)

रानी सोचे ना पिया यहाँ, ना हूँ अपने मैं बाबुल घर ।
क्या करूँगी दीप जलाकर मैं, जब घोर अंधेरा उर अंदर ।।
रानी उच्छासे भरती थी, इतने में लच्छू जी आए ।
ले धूप दीप नैवेद्य साथ, पूजा सामग्री भी लाये ।।
बोले बहिना किस कारण तुम, बैठी हो घोर अंधेरे में ।
है दीवाली का महापर्व, क्यों दीप जला ना डेरे में ।।
है तीन मास बीते तुमको, क्या अब भी गैर समझती हो ।
जब भी आता खुश ना दिखतीं, क्या बैर स्वयं से रखती हो ।।

पर इतना तो ध्यान करो, जो कोख तुम्हारी पलता है ।
जो जीवन असफल समझ रहीं, उसकी वह एक सफलता है ।।
इसलिए उठो मुस्काओ तुम, हँसकर के दीप जलाओ तुम ।
जो आने वाला है आँगन में, उसको निज कष्ट भुलाओ तुम ।।

दो०- लच्छू की यह बात सुन, रानी उठी कराह ।
दिल अंदर जो दर्द था, निकला नेत्रों राह ।। (६३)

झट आँचल से पोछे आँसू, लच्छू जी देख न पाये कुछ ।
वह उठी पूजने लक्ष्मी को, फिर घी के दीप जलाये कुछ ।।
दे अक्षत रोली का टीका, लक्ष्मी गणेश का ध्यान किया ।
मन व्यथित व्यथा से अपनी था, पर भाई का सम्मान किया ।।
वह वाती देतीं दीपों में, लच्छू जी घी भरते जाते ।
वह दीप से दीप जलाती हैं, वह यहाँ वहाँ रखते जाते ।।
था घोर अंधेरा अभी जहां, हो गया उजाला पल भर में ।
भाई के प्रेम ने बहिना का, सब दुख हर डाला पल भर में ।।
जब दीप रख चुके घर बाहर, बुलवाया दास दासियों को ।
गहने कपड़े को रानी से, बंटवाया दास दासियों को ।।

दो०- बीत गई दीपावली, प्रथमा बीती जाय ।
आई द्वितीया भ्रात की, लच्छू जी हरषाय ।। (६४)

लच्छू जी सोचे मन अपने, हूँ आज बड़ा मैं बड़भागी ।
वर्षों से सूने मस्तक पर, अब रोली का टीका लागी ।।
सबकी बहनें टीका करती, मैं बिन टीका रह जाता था ।
मन ही मन रोया करता था, ऊपर से हँसता जाता था ।।
पर आज शुभ घड़ी आई है, मेरे भी बहिन पास में है ।
क्यों देर लगाती टीका में, ना रुकना मेरे बस में है ।।

लच्छू उतावले से टहलें, इतने में सम्मुख नजर गई ।
रघुधन तेली आते देखे, तो उनकी सोचें बिखर गई ।।
आते ही रघुधन यों बोले, लच्छू तुम हम से पिट जइहौ ।
राखी बंधबइहौ साथ साथ, टीका का अकेले करवइहौ ।।
यदि हमें बुलाना ना था तो, उन मेरी बहिन बनाया क्यों ।
हम तुमसे मिलने आए थे, फिर राखी को बंधवाया क्यों ।।

दो०- एक बार यदि बंध गये, बंधे हजारों बार ।
फिर कैसे मैं तोड़ दूँ, यह बन्धन मेरे यार ।। (६५)

अब और सुनों लच्छू आगे, इस जग में रिश्ते नाते जो ।
विश्वास मात्र पर टिके सभी, वरना है कच्चे धागे वो ।।
मुँह बोले रिश्ते हो चाहे, या रिश्ते बहुत सहोदर हों ।
विश्वास नींव यदि दरक जाय, तो पल में गिरते भू पर वो ।।
कुछ रिश्तों की पूंजी मिलती, जन्मत ही हमें धरोहर में ।
कुछ अर्जित करते रहते हम, इस जीवन रूपी सागर में ।।
कुछ लालचवश खोते इनको, कुछ की बस यह ही थाती है ।
वह तो जाते हैं स्वर्ग चले, संतति उनकी सुख पाती है ।।
अतिएव बहिन माना उनको, तो छोड़ूँगा ना साथ मित्र ।
मैं टीका भी करवाऊँगा, निज शीश रखाऊँ हाथ मित्र ।।

दो०- रघुधन की यह बात सुन, लच्छू जी सकुचाय ।
बोले यों कर पकड़कर, चलिये द्विज कराय ।। (६६)

हाथों में ले के हाथ चले, वह मित्र मित्र के साथ चले ।
करवाने द्विज के टीके को, उस मुंहबोली के भ्रात चले ।।
उत मंझा घूमें थाल लिए, ढूँढे अपने एक भाई को ।
द्वि भाई देखे मगन हुई, जस द्रोपदि राम कन्हाई को ।।

झट थाल थमाया दासी को, दोनों के हाथ गहे बढ़कर ।
बैठारे झटपट स्वर्ण पाट, फिर मस्तक तिलक दिया बढ़कर ।।
लुट गया प्रेम लुट रहा प्रेम, कोई लुटा रहा कोई लूट रहा ।
भर गया ह्रदय बनकर आँसू, नेत्रों से रस्ता पूछ रहा ।।
बहिना सोचे क्यों रोते ये, भाई सोचे ये क्यों रोती ।
पर चित्रलिखित से खड़े सभी, पूछे तो तब जब सुधि होती ।।

दो०- प्रेम भाव सब समझते, शिशु, पशु, पक्षी आदि ।
प्रेम मगन नंगे पगन, दौड़े आइ अनादि ।। (९७)

लखि प्रेम बहिन और भाई का, सूरज सकुचावे मन ही मन ।
मैं भी करवाता द्विज आज, जो मेरे होती निकट बहिन ।।
पक्षी सोचें मन अपने में, यह बर्ष बीत गया धोखे में ।
हम भी ढूँढे दो चार बहिन, फिर झाँके प्रेम झरोखे में ।।
पर हवा की चालाकी देखो, कुछ इधर बही कुछ उधर बही ।
लाई उठाय भू धूल तुरत, बृक्षों के मस्तक पोत दई ।।
इस बहिन भाई के अमिट प्रेम, इस बहिन भाई के नाते को ।
जो समझे वो हैं समझदार, वो धन्य हैं इसे निभाते जो ।।
हो गई द्विज यह प्रेम भरी, लच्छू और रघुधन चले गए ।
पर प्रेम पगी भीनी भीनी, खुशबू उस वन में छोड़ गए ।।

दो०- शत वासर हो खुशी के, पलक झपकि कटि जाय ।
दुख की एकइ रात्रि भी, बर्षों सी दिखलाय ।। (९८)

कार्तिक तो बीता खुशी खुशी, अब मार्गशीष की वारी है ।
नन्हें पैरों पे चलकर के, आ रही शिशिर ऋतु प्यारी है ।।
इत मीठी मीठी ठंडक थी, उत मीठा मीठा दर्द उठा ।
मंझा रानी के ह्रदय में, फिर पिया मिलन का ज्वार उठा ।।

कहकहे लगाती शिशिर खड़ी, मंझा को खूब चिढ़ाती है ।
बिन पिया कटें कैसे रातें, यह पछुआ से पुछवाती है ।।
मंझा चिढ़कर के यों बोली, ऐ पछुआ क्यों मम फिक्र तुम्हें ।
मैं शिशिर बिताऊँ चाँद देख, दिखती प्रीतम छवि जहां हमें ।।
यदि चाँद भी छुपे बादलों में, तो दिया की लौ सम्मुख होगी ।
उसमें भी प्रीतम छवि पाऊँ, यदि प्रीति मेरे हिय में होगी ।।

दो०- क्या पावस क्या शिशिर ऋतु, यदि मन दृणता होय ।
सब ऋतु पटके शीश पर, मन ना चंचल होय ।। (९९)

मंझा ने हराये मार्गशीष, और पौष हराये दृणता से ।
पर माघ स्वयं सिर नीचा कर, हारे मंझा पतिव्रता से ।।
ये अपना रूप दिखा हारे, वह अपना सत्य दिखा जीतीं ।
उनकी अँखियाँ सोते जगते, बस पति दर्शन का रस पीती ।।
यदि छुपकर बैठा हृदय मध्य, क्यों ढूंढा जाय जमाने में ।
जब बिलग नहीं है हमसे वो, तो क्या मुश्किल है पाने में ।।
सबको दिखलाई देता ये, मंझा एकान्त निवास करें ।
पर वो तो अपने प्रीतम संग, निशि वासर ही परिहास करें ।।
विश्वास नहीं यदि कर सकते, तो प्रेम नाव में बैठ लखो ।
उस घाट तुम्हें पहुंचा देगी, जिस घाट की मन में सोच रखो ।।

दो०- बीत गया यों माघ भी, आया फाल्गुन मास ।
इस पर भी जय पाऊँगी, मंझा को विश्वास ।। (१००)

यदि दृण संकल्पे कोई तो, नीची दिखती पर्वत चोटी ।
लंगड़ा भी उस पर चढ़ जाता, यदि दृढ़ इच्छा मन में होती ।।
फिर यह तो मात्र इंद्रियाँ है, जो अन्तर्मन पर निर्भर हैं ।
क्यों नहीं ये वश में हो सकतीं, क्या 'मैं' से भी ये ऊपर हैं ।।

कुछ अपनों को अपना समझे, कुछ जग को अपना कहते हैं ।
कुछ सबको सपना कहते हैं, बस प्रभु को अपना कहते हैं ।।
धन वैभव या राजपाट, पति बहिन मातु या भाई सब ।
है छूट धरा पर ही जाते, होती उस लोक विदाई जब ।।
रह जाता केवल पाप पुण्य, यश अपयश की गाथा लेकर ।
जो चाहें दोनों लोक कीर्ति, करते सद्कर्म व्यथा लेकर ।।

दो०- मंझा के उर में उठे, इत सात्विक विचार ।
उत लच्छू रघुधन दिखे, आते ले उपहार ।। (१०१)

रघुधन तो अपने हाथों में, लाते गुलाल के थाल दिखे ।
लच्छू रंगों से रंगे हुये, नीले पीले और लाल दिखे ।।
उनके पीछे कुछ दास दिखे, लाते बाजे और तुरही को ।
ले स्वर्ण थाल दासियाँ दिखी, ओढ़े जो मुख पर चुनरी को ।।
रख दिये थाल चौवारे में, फिर बाजे बजने लगे वहाँ ।
सबने आ घेरा मंझा को, नाचे दे ठुमके यहाँ वहाँ ।।
यह देख के मंझा दे बोली, भैया क्यों मुझे चिढ़ाते हो ।
भाई संग होली खेलूँ मैं, क्या यह ही मुझे सिखाते हो ।।
दीजिये गुलाल दासियों को, वे होली खेलें दासों से ।
जब पति ने मेरे त्याग दिया, तो क्या मतलब परिहासों से ।।

दो०- पति, देवर, भावज, ननद, बहनोई तक ठीक ।
गैर मर्द, चाकर, बिरन, संग होली ना नीक ।। (१०२)

मंझा यों अपनी बात कहे, पर वे कुछ और ही जतन करें ।
वे घूँघट वाली दासिन से, कुछ कहने का प्रयत्न करें ।।
कर रहे इशारा भौहों से, इक आँख दबा कर कुछ कहते ।
दासीं शायद वह समझ गईं, जो रघुधन लच्छू है कहते ।।

इक घूँघट वाली दौड़ पड़ी, मंझा को जाके पकड़ लिया ।
दूजी दौड़ी लाई गुलाल, मंझा के मुख पर रगड़ दिया ।।
पहली बोली कसकर रगड़ो, छूटे ना रंग हमारा यह ।
दूजी बोली मैं पकड़ रही, बहिना है कार्य तुम्हारा यह ।।
उन दोनों दासिन ने मिलकर, मंझा को सारा रंग डाला ।
पर मंझा क्रोध से लाल हुई, रंग पड़ गया गोरे से काला ।।
दासिन से बोलीं बेहूदी, औकात न तुमको याद रही ।
भाई तुम भी हो मौन खड़े, इक बात न इनसे जात कही ।।

दो०- लच्छू बोले बहिन से, नहीं बेवजह मौन ।
हटा के घूँघट देखिये, घूँघट पीछे कौन ।। (१०३)

बहिना तुम क्रोधित क्यों होतीं, यह पुण्य पर्व है होली का ।
घूँघट में नहीं दासियाँ हैं, सामाँ है हँसी ठिठोली का ।।
सेविकाओ घूँघट को पलटो, क्रोधाग्नि बहुत भयंकर है ।
मुख दिखला के ठंडा कर दो, वरना जल जाने का डर है ।।
इत आज्ञा पा घूँघट पलटे, उत मंझा दे की नजर पड़ी ।
लच्छू और रघुधन दोनों की, पत्नियाँ सामने लखी खड़ी ।।
संकोच हुआ मंझा दे को, पर दिल में खुशियाँ थी भारी ।
बोली अब तक तुमने खेली, अब मेरी होली की बारी ।।
लेकर गुलाल रंग रहीं गाल, मंझा अपनी भौजाइन के ।
भावजे भी मुख को चूम रहीं, फिर धूल ले रहीं पाइन के ।।

दो०- हँसी ठिठोली रंग बिन, कब होली मन पाय ।
फीके सब पकवान यदि, मन प्रसन्न हुइ जाय ।। (१०४)

दौड़ो दौड़ो पकड़ो पकड़ो, कहीं खो ना जाये खुशियाँ सब ।
होली तो जोड़ती टूटे दिल, मत चूको सब से भेटों अब ।।

क्या अपने औ क्या बेगाने, क्या बैरी और क्या विलग हुये ।
होली सिखलाती गले मिलो, मत सोचो क्यों हम अलग हुये ।।
होली की पावन अग्नि जले, तो स्वाहा कर दो बुरे कर्म ।
ले आओ खुशियाँ घर अपने, होली सिखलाती यही मर्म ।।
अब यहाँ वनों में भी देखो, वेगानों को अपना करती ।
है कौन बहिन किसकी भावज, पर रिश्तों को पक्का करती ।।
मंझा रंग खेले भावज संग, लच्छू रघुधन संग खेल रहे ।
सब दास दासियाँ अशीषे, इनमें ऐसा ही मेल रहे ।।

दो०- बांस वनी में यों मना, होली का त्योहार ।
बैर भाव तजि सब मिलें, यह होली का सार ।। (१०५)

होली तो हो ली इस वन में, पर भूख तो मिटती भोजन से ।
पानी की मात्रा कब नपती, गज और पसेरी योजन से ।।
मंझा रानी का दुख लगता, सौ सागर से भी बड़ा हुआ ।
गए आठ महीने खुशियों के, नौवाँ दुख लेकर खड़ा हुआ ।।
मंझा सोचे मन ही मन में, कब जन्मेगा सुत पता नहीं ।
तब मैं डायन बन जाऊँगी, यह भाग्य कुंडली बता रही ।।
है भाग्य हीन यह सुत मेरा, जो जन्म पूर्व छुट गए पिता ।
मैं भी डायन बन जाऊँगी, को पालेगा बिन मातु पिता ।।
है एक समस्या और कठिन, बिन नाम पिता के मेरा सुत ।
निष्ठुर निर्मम इस जग में, वो सम्मान पाएगा नहीं उचित ।।
फिर उसका जीना जीना क्या, हो जिसका कुछ सम्मान नहीं ।
उसका मर जाना ही बेहतर, हो जिसका जग में मान नहीं ।।

दो०- देव, दनुज, किन्नर, नृपति, साधारण इन्सान ।
अर्पण जीवन तक करें, पाने को सम्मान ।। (१०६)

मम सुत साधारण नर होगा, थे देव लड़े यह सुना मैंने ।
पाने को सर्वश्रेष्ठ स्थल, प्रतियोगी बने सुना मैंने ।।
जीते थे जिसमें श्री गणेश, यह झगड़ा मात्र मान का था ।
देवों से लड़ते रहे असुर, यह झंझट भी सम्मान का था ।।
फिर बिना मान के इस जग में, जीवित रहना भी मुश्किल है ।
सूकर कूकर से जीवन को, जीवन कहना भी मुश्किल है ।।
अतिएव यही अच्छा होगा, मेरा सुत भू पर आए ना ।
मैं भी डायन ना बन पाऊँ, वह भी सम्मान गँवाए ना ।।
यदि दिल कठोर कर जन्मूँ भी, और मान की बात भुलाऊँ मैं ।
क्या पता कि डायन बन कर के, निज सुत को ही खा जाऊँ मैं ।।
हो गया जो ऐसा घृणित कार्य, तो ना इतिहास भुलाएगा ।
माँ बेटे का पावन रिश्ता, मुझसे दागी हो जाएगा ।।

दो०- अलबेले ही सोचते, धर्म नीति की बात ।
निज सुख को कुछ कर रहे, अपनों से अपघात ।। (१०६)

पर श्रेष्ठ वही है इस जग में, जो सुख दुख देखे सब जग का ।
ना स्वारथ बस जो संत बने, ना चोला ओढ़े जो ठग का ।।
जो अंदर हो वो बाहर हो, जो बाहर हो वो अंदर हो ।
हो सोच धरातल की जिसमें, उस प्रभु का भी मन में डर हो ।।
ऐसे मनुष्य भू भार हरें, छाया देते वट बनकर के ।
रहती है कान्ति युगांतर तक, जाते निज नाम अमर करके ।।
फिर मैं क्यों अपने कर्मों से, अपयश लूँ दोनों लोकों का ।
इससे तो अच्छा प्राण तजूँ, हो दूर अंदेशा शोकों का ।।
हाँ हाँ यही उचित होगा, मैं छोड़ूँ शापित जीवन को ।
ओ गंगा मैया आती मैं, अब गोद तुम्हारी तजि वन को ।।

दो०- मंझा का मन कर रहा, अन्तर्मन से द्वन्द ।
वो जगतीं सब सोवते, मानव, पशु, खग बृंद ।। (१०८)

प्रथम प्रहर मन जीत रहा, द्वतीये में जीता अन्तर्मन ।
जब प्रहर तीसरा आया है, तो दिल से हारे दोनों मन ।।
अन्तर्मन दिल से यों बोला, आने दो भू पर बालक को ।
क्या गलती उस बेचारे की, जो देख सके ना नभ तक को ।।
दिल बोला चुप हो अन्तर्मन, क्या होगा भू पर बालक का ।
जिसकी माता डायन होगी, और पता न होगा पितु तक का ।।
इसलिए मिटे ये मातु साथ, इसको बस यह ही अच्छा है ।
इसकी तो होगी तब होगी, माता की आज परीक्षा है ।।
मन हार गया दिल जीत गया, मंझा दे गृह को छोड़ चलीं ।
सोते रक्षक और दास सभी, मंझा तो गंगा ओर चलीं ।।
लच्छू छूटे रघुधन छूटे, भावज गृह बांस वनी छूटी ।
वह पहुँच गईं गंगा तट पर, रोती रोती रोती रोती ।।

दो०- एक बार मन रुक सके, अन्तर्मन समुझाय ।
पर दिल यदि कुछ ठान ले, कस समझाया जाय ।। (१०९)

है एक बात यहाँ कथन योग्य, जो मेरे समझ में आती है ।
कुछ तो बतलाते महाग्रन्थ, कुछ लोकोक्ती बतलाती है ।।
है एक रात्रि पर चार खण्ड, जो चार प्रहर में बंटे हुये ।
मानव भी भिन्न कोटियों के, है इन प्रहरों से जुड़े हुये ।।
होती है रात्रि तो निद्रा को, श्रम करके नर दिन में थकते ।
पर कुछ ऐसे भी होते है, दिन में सोते निशि में जगते ।।
कहते है प्रथम प्रहर जगते, है चोर लुटेरे इस जग के ।
द्वितीय में जगते कामी नर, या भूत पिशाचिनि मरघट के ।।

तीजे में जगते ऋषी मुनी, चौथे में रोगी जगता है ।
पर वह नर सारी रात जगे, जिसके मन भारी चिंता है ।।

दो०- चिंता चांडालिनि बने, नर को देइ सुखाय ।
अमर वेल बिन मूल की, चढ़े बृक्ष मुरझाय ।। (११०)

है रात्रि तीसरा प्रहर यहाँ, मंझा ठाडी गंगा तट पर ।
जिसमें जगते है ऋषी मुनी, अपने अपने प्रभु सुमिरन कर ।।
हे युधिष्ठिर सदग्रन्थ कहें, आते है देवता भी भू पर ।
उनको दर्शन भी देते है, हो कृपा दृष्टि जिनके ऊपर ।।
लक्ष्मी गणेश गौरा महेश, आते है श्री हरि विष्णु यहाँ ।
है प्रहर तीसरा सत्व लिए, फिर इंद्रादिक को चैन कहाँ ।।
इस गूढ तथ्य को ऋषि ज्ञानी, है आदिकाल से जान रहे ।
पर देव न मिले सरलता से, इस सत्य को भी पहचान रहे ।।
फिर भी उठते है इसी प्रहर, हो सकता दर्शन हो जाये ।
क्या पता कौन सी पूजा से, मुझमें आकर्षण हो जाये ।।

दो०- मंझा गंगा तट खड़ी, लहरें रहीं निहार ।
वायु मार्ग से जा रहे, उत अश्विनी कुमार ।। (१११)

निकले निवास से भ्रमण हेतु, रोती मंझा पर नजर पड़ी ।
लखि कहें एक से दूजे यों, क्यों रोती नारी यहाँ खड़ी ।।
यह घड़ी नहीं है रोने की, फिर गंगा तट क्यों आई है ।
ऐसे निहारती लहरों को, निधि कोई गंग समाई है ।।
दूजे बोले मुझको लगता, है दुखिया क्या निधि पाएगी ।
जो नहीं रोकने गए इसे, तो स्वयं ही गंग समाएगी ।।
यदि चिंता मेरी सत्य सखे, तो हमको कुछ करना होगा ।
यदि पातक से बचना चाहो, तो इनका दुख हरना होगा ।।

इस तरह वार्ता करते ये, उत मंझा में चेतना जगी ।
'आती मैया तेरी गोदी', यह कहकर गंगा ओर भगी ।।

दो०- चिन्ता थी जिस कार्य की, होने लगा अगार ।
चिन्तित उर, कंपित बदन, थे अश्वनी कुमार ।। (११२)

वे दौड़ीं प्राण गंवाने को, ये दौड़े उन्हें बचाने को ।
दायें वाएं से पकड़े ये, वे उद्धत मरने जाने को ।।
ये बोले देवी क्यों मरती, वे बोली मुझको पता नहीं ।
मैं भाग्य के हाथों खेल रही, है इसमें मेरी खता नहीं ।।
ये बोले देवी शान्ति रहो, हम देव दृष्टि से देख रहे ।
है भाग्य तुम्हारा अति उज्जवल, बस थोड़ा तुमको कष्ट रहे ।।
वे बोली मैं तो श्रापित हूँ, जिस गर्भ को धारण किए हुए ।
मैं बनूँगी डायन जन्मत ही, इक रूप भयानक लिए हुए ।।
ये बोले किसने कहा तुम्हें, यह सत्य नहीं है मानों तुम ।
तुम कभी भी डायन ना होगी, इस भ्रम को दिल से निकालो तुम ।।

दो०- साधारण मानव नहीं, हम है देव कुमार ।
जो कहते वह सत्य है, सुन लो धीरज धार ।। (११३)

यह सुन मंझा कुछ चकित हुई, पलटीं चेहरों पर नजर गई ।
है निश्चित दोनों देव कुमर, लखि सुंदरता वह समझ गईं ।।
फिर बोली कौन देवता हो, क्यों आए मुझको बतला दो ।
डायन बनने ना बनने का, कुछ भेद मुझे भी समझा दो ।।
वे बोले हम अश्वनी कुमर, आकाश मार्ग से भ्रमण करें ।
देखा करते तुम्हें आत्मघात, तो इस धरती पर उतर पड़े ।।

विधि के विरुद्ध कोई कार्य यहाँ, यदि मेरे सम्मुख हो जाता ।
अपयश लग जाता देवों पर, मुझको भी पातक लग जाता ।।
हम भाग्य कुण्डली देख रहे, जिसमें डायन का घर ना है ।
अति वीर प्रतापी वह होगा, जो कोख तुम्हारी ललना है ।।

दो०- रोगी को औषधि मिले, भूखे को आहार ।
मिले सांत्वना दुखी को, क्यों होवे वेजार ।। (११४)

मंझा को दोनों देव नहीं, इक रामबाण सी औषधि थे ।
जो शब्द झरे उनके मुख से, वह मरते को अमृत निधि थे ।।
वे कहें बनूँगी डायन ना, तो फिर क्यों कहा पुरोहित ने ।
ये बोले था षडयंत्र वहाँ, जो ना समझा तेरे पति ने ।।
फिर भी देवी जो कष्ट तुम्हें, उसमें उनका कुछ दोष नहीं ।
वह स्वयं ही सुनकर वेसुध थे, था उनको अपना होश नहीं ।।
हम तो यह कहते उनका क्या, था दोष किसी का वहाँ नहीं ।
जो लिखा भाग्य में ब्रह्मा ने, वह कभी मिटाये मिटा नहीं ।।
अतिएव धैर्य को धारण कर, अपना कर्तव्य निभाओ तुम ।
लो मुझसे कुछ वरदान माँग, फिर अपने गृह को जाओ तुम ।।

दो०- दर्शन विफल न होत है, हो सज्जन या देव ।
स्वर्ग नसैनी बांटते, हाथ बढ़ाकर लेव ।। (११५)

मंझा सोचे कितना माँगू, जब कुछ भी मेरे पास नहीं ।
मेरे सब दुख ये हर लेंगे, यह मुझको है विश्वास नहीं ।।
पर समझ गए अश्वनी कुमार, है नारी यह असमंजस में ।
बोले देवी जो ब्रह्म लिखा, वह नहीं मिटाना मम वश में ।।
पर है देवों की रीति यही, पहले तो दर्शन ना देते ।
यदि दर्शन देते है नर को, तो कुछ ना कुछ वर भी देते ।।

अतिएव सुनों तुम ऐ देवी, जो कोख तुम्हारी पलता है ।
वह दशवे मास में जन्मेगा, इसमें ही क्षेम कुशलता है ।।
हम देते वर तेरे सुत को, मुझसे भी सुंदर वह होगा ।
सब राजा होंगे तेज हीन, जब उसका सूर्य उदय होगा ।।
वह वीर प्रतापी बुद्धिमान, और अश्वों का ज्ञाता होगा ।
पूजा जाएगा देव तुल्य, ऐसा उसका जीवन होगा ।।

दो०- देकर के वरदान वह, हो गए अंतर्ध्यान ।
मौन खड़ी मंझा वहाँ, कुन्द हो गया ज्ञान ।। (११६)

मंझा स्तब्ध खड़ी तट पर, थे देव तो अंतर्ध्यान हुए ।
वर पाकर देव कुमारों से, उलझन में उनके प्राण हुए ।।
डायन डायन कैसी डायन, मैं डायन ना यह देव कहें ।
जाने किसने षडयंत्र रचा, जो सब दिन दुख में बीत रहे ।।
जाती हूँ प्रियतम पास अभी, सब सत्य उन्हें बतलाऊंगी ।
जन्मत ही राजकुमर उनको, सबसे पहले दिखलाऊंगी ।।
फिर कहूँगी मैं तो डायन हूँ, अतिएव रहूँगी पास नहीं ।
सुत को भी छूने ना दूँगी, जब मुझ पर है विश्वास नहीं ।।
रह लूँगी जंगल कुटी बना, छाऊंगी छप्पर छानी को ।
पर उनके निकट न रक्खूंगी, उनकी अनमोल निशानी को ।।

दो०- निज पत्नी के हृदय को, जो नर नहिं पतियात ।
क्या उससे है दूरियाँ, क्या है उसका साथ ।। (११७)

जाऊँगी मैं नरवरगढ़ को, जाऊँगी सचमुच जाऊँगी ।
कुछ दोष नहीं मुझ में सुत में, समुंहे उनको दिखलाऊँगी ।।
फिर पूछूंगी पति का उनने, कैसा कर्तव्य निभाया है ।
बिन सोचे बिना विचारे ही, मुझे शूली पर चढ़वाया है ।।

फिर कहूँगी छोड़ो राज पाट, वरना दागी कहलाओगे ।
घर का षडयंत्र न समझ सके, तो कैसे राज्य चलाओगे ।।
अतिएव उतारो राज वस्त्र, सन्यासी हो वन गमन करो ।
ना वंश बेल पर दाग लगे, कम से कम ऐसा जतन करो ।।
मुझ बेगुनाह अर्धांगिनि को, दे दिया हुक्म मरवाने का ।
पति होता रक्षक पत्नी का, करना था यत्न बचाने का ।।

दो०- मानव मन स्थिर नहीं, रहता अपनी गेह ।
कबहूँ प्रिय बैरी लगे, कबहुँ शत्रु से नेह ।। (११८)

मंझा का मन भी स्थिर ना, रह पाया नरवर जाने को ।
यहाँ भूतकाल की कुछ बातें, आ गई उन्हें डरपाने को ।।
जो शीश गर्व से ऊंचा था, वह धीरे धीरे नमन हुआ ।
जो ज्वार उठा था हृदय मध्य, अंदर ही अंदर दफन हुआ ।।
मन सोचे यदि 'नरवर' जाऊँ, तो प्रियतम पूंछे कहाँ रहीं ।
क्या मैं प्रमाण दे पाऊँगी, था भाई जिसके यहाँ रही ।।
तन शुद्ध भले मन शुद्ध भले, सत का भी मैंने ध्यान रखा ।
पर पल में लगे कलंक अगर, संदेह नाग फन काढ़ जगा ।।
फिर राजाज्ञा वह आज्ञा है, जो टाले वह अपराधी हो ।
पालन करते सब अधीनस्थ, सच्ची हो अथवा झूठी हो ।।
मुझ दुखिया के दुख में वह कर, कितनों ने टाली राजाज्ञा ।
निश्चित फांसी हो जाएगी, जिनने ना मानी राजाज्ञा ।।
जल्लादों को राजाज्ञा थी, जंगल में मम सिर कलम करें ।
पर प्रभु ने ऐसा खेल रचा, वह राज दण्ड से नहीं डरे ।।
मुझ अबला में मुझ दुखिया में, उनको निज बहिन दिखाई दी ।
हो गई ध्वस्त राजाज्ञा तब, मुझे जीवन डोर थमाई थी ।।
राजा मुझको जीवित देंखे, तो उनको पकड़ मंगाएगे ।
जो मेरे धर्म के भाई है, पल में शूली चढ़ जाएगे ।।

दो०- है आवश्यक तत्व ये, गैरत आत्मविश्वास ।
वेगैरत नर जीवते, जैसे जिंदा ल्हास ।। (११६)

खुद्दार रहें दिल के अमीर, बदकार गरीबी सहते है ।
ये गंगा जल से निर्मल है, वे गन्दे नाले बहते है ।।
सब देव यक्ष किन्नर मनुष्य, सम्मान करें खुद्दारों का ।
जब छाए विपति बदरिया तब, कोई साथ ने बदकारों का ।।
परहित में अपना हित देखे, भूले न कभी उपकारी को ।
क्षण भंगुर जीवन सुख खातिर, छोड़े न कभी खुद्दारी को ।।
ऐसे जन श्रेष्ठ कहाते है, सदियों तक रहते चर्चा में ।
जाते ही सीधे स्वर्ग मिले, पड़ते ना नरकी नरघा में ।।
पर जो अपने उपकारी को, निज हित को घात लगाते है ।
वह दोनों लोकों में अपने, अपयश के बीज बुबाते हैं ।।
फिर जिनने जीवन दान दिया, वे सब मेरे उपकारी है ।
उनको मैं शूली चढ़वा दूँ, यह गद्दारी बदकारी है ।।

दो०- बिन आज्ञा औ खबर बिन, रहती लच्छू पास ।
यदि राजा यह जान लें, निश्चित होइ विनाश ।। (१२०)

बांधा है रक्षाबंधन को, या द्विज पे जिनको तिलक किया ।
जिसने माना हो बहिन हमें, ना दिल से कबहूँ बिलग किया ।।
अपनों से ज्यादा मान दिया, क्या उनका अनहित मैं कर दूँ ।
झोली भर खुशियाँ दी जिसने, क्या दुख की गठरी मैं धर दूँ ।।
यदि मैं जाऊँगी निषद देश, तो निश्चित विपदा आयेगी ।
फिर भाई बहिन के रिश्ते की, बगिया पल में छितराएगी ।।
अतिएव न जाऊँ निषद देश, है श्रेष्ठ मुझे यह लगता है ।
सुत पालूँ बिना सहारे के, इसमें ही छुपी सफलता है ।।

इसमें ही सबका हित लगता, इसमें ही सबकी खुशहाली ।
यदि मुझसे इनका अहित हुआ, कहलाऊँगी नागिन काली ।।

दो०- भ्रात प्रेम जीता इधर, हारा पति का मोह ।
राजभवन की हार थी, जीते जंगल खोह ।। (१२१)

यह अंतर्द्वन्द था मंझा का, या बदकारी की हार हुई ।
हारा बल सातों फेरों का, या सम्बल की जयकार हुई ।।
मैं तुच्छ बुद्धि ना समझ सका, पर इतना तुम्हें बताते है ।
होता उतना ही जगत मध्य, जितना ब्रहमा लिख जाते हैं ।।
मंझा ने गंगा तट पर ही, त्यागा अपने जज्बातों को ।
वो वापस बांस वनी आई, सब भूली पिछली बातों को ।।
यह तो अच्छा था अभी वहाँ, सब दास दासियाँ सोये थे ।
ये आई गई न पता उन्हें, वे स्वप्न लोक में खोये थे ।।
पर ना समझो सब सोये थे, जाने कितनों की जाग हुई ।
उत भोर का तारा उदय हुआ, इत मुर्गे की भी बांग हुई ।।

दो०- पूरब दिशि नजरें गई, दिखा भानु का भाल ।
मंझा हिय संकोच था, अरुण हो गये गाल ।। (१२२)

मंझा सोचे हिय अपने में, जो कुछ भी होता इस जग में ।
उसकी नजरों से छुपता ना, जो बैठा है ऊपर नभ में ।।
हो भले बुरे अच्छे ओछे, सब कर्म प्रकट होते उन पर ।
जिसके हो जैसे कर्म यहाँ, वैसा फल देते है प्रभुवर ।।
इसलिए भूलकर भी जनता, ना बुरे मार्ग का ख्याल करे ।
जब कष्ट परे तब धर्म गहे, उन परमेश्वर का ध्यान धरे ।।
चाहे कितना संकट आए, वह सबकी पीर मिटा देंगे ।
यदि मन से उनका सुमिरन हो, भवसागर पार लगा देंगे ।।

क्या रखा राज्य या राजा में, बस मैं भी उनका ध्यान करूँ ।
सब सुख आएंगे स्वयं यहाँ, यदि उनको अंगीकार करूँ ।।

दो०- प्रभु सुमिरन मंझा करे, दिन बीते पल माहि ।
पुत्र जन्म की घड़ी भी, आइ गई क्षण माहि ।। (१२३)

बैसाख पूर्णिमा का शुभ दिन, मंझा ने दासी बुलवाई ।
कुछ मीठा मीठा दर्द उठा, यह बात कान में फुसलाई ।।
वह चतुर सयानी समझ गई, स्थिर न रख सकी स्वांसो को ।
आने वाली है शुभ घड़ियाँ, बतलाया दासी दासों को ।।
यह सुनकर दासों का मुखिया, दौड़ा न तनिक भी देर करी ।
कंकड़ पत्थर कांटे न लखे, लच्छू की देहरी जाय धरी ।।
लच्छू जी भोजन जीम रहे, वह सम्मुख जाके खड़ा हुआ ।
गुस्से से लच्छू काँप कहें, लगता तू मुझसे बड़ा हुआ ।।
वेखटके घुसा महल मेरे, आ गया रसोई तक में है ।
वे आज्ञा छोड़ा मंझा को, लगता तू मृत्यु के वश में है ।।
घबराया दास ह्रदय अपने, बोला स्वामी था समय नहीं ।
मैं तो फिर भी ना बच पाता, हो जाती यदि मुझे देर कहीं ।।
चलिये चलिये जल्दी चलिये, मुझको दे देना सजा वहीं ।
शुभ दिन आया है बांस वनी, कहीं देर न होवे हमें यहीं ।।

दो०- मोद बड़ा है क्रोध से, मन में यह बैठाउ ।
पाय प्रेम शीतल परौ, क्रोधित नहिं रह पाउ ।। (१२४)

लच्छू का क्रोध भी क्रोध नहीं, निकला जल मध्य बुलबुले सा ।
सुनकर के मोद को बांस वनी, मन होने लगा चुलबुले सा ।।
भोजन छोड़ा पानी छोड़ा, दौड़े फिर दास के निकट चले ।
लाखों का हार था गले मध्य, बिन सोचे डाला दास गले ।।

फिर बोले जल्दी जाउ चले, रघुधन को खबर सुना देना ।
लेते जाना मिष्ठान आदि, वह रस्ते में बँटवा देना ।।
फिर बोले अपनी भार्या से, क्यों बैठी करो तैयारी तुम ।
नाउन धनकुन को बुलवा लो, बुलवा लो पण्डित वारी तुम ।।
एक क्वाँरी कन्या ब्राह्मण की, बुलवाना भूल न जाना तुम ।
मेरी उस प्यारी बहिना की, बस उसको ननद बनाना तुम ।।

दो०- गीत गवैया नारियाँ, ढोलक, झांझ, मृदंग ।
कुछ नचकेरी दासियाँ, ले लो अपने संग ।। (१२५)

तुम करो तैयारी यहाँ नारि, मैं मोहर अशर्फी लाता हूँ ।
तुम सजो नारियों सहित यहाँ, मैं रथ इत्यादि सजाता हूँ ।।
शीघ्रता करो शीघ्रता करो, अब समय नहीं है देरी का ।
ले लो सब सामां मन भर का, जिसका हो काम पसेरी का ।।
इतना कह लच्छू बाहर को, भागे दासों को बुला लिया ।
आवश्यक वे आवश्यक जो, सब सामाँ पल में मंगा लिया ।।
सज गई पालकी रथ रब्भे, सज गई नारियाँ पल भर में ।
जो राह प्रहर भर में न कटे, वह राह कट गई क्षण भर में ।।
सब पहुँच गये झट बांस वनी, नारियाँ चली मंझा के निकट ।
बाहर दरबार है लच्छू का, पड़ गई कुर्सियाँ भी झटपट ।।

दो०- दासों का मुखिया इधर, बाँट रहा मिष्ठान ।
कुछ देरी हुई मार्ग में, पहुंचा रघुधन थान ।। (१२६)

ओ मालिक ओ सेठ सुनो, आवाज दे रहा बाहर से ।
सुनकर रघुधन बाहर निकले, फिर मिले मित्र के चाकर से ।।
रघुधन बोले कैसे आए, क्यों भेजा लच्छू ने तुमको ।
क्या मुझसे उनका कार्य पड़ा, जो याद कर लिया है मुझको ।।

दासों का मुखिया यों बोला, कुछ नहीं कार्य है ओ मालिक ।
तुम मामा बनने वाले हो, अब बांस वनी को चलो तनिक ।।
मेरे मालिक ने कहलाया, तुमसे कह दूँ जल्दी आयें ।
यदि देर करेंगे आने में, तो कच्छप मामा कहलाये ।।
और कहा कह दूँ तुमसे, अबकी ना कुछ भी कहना तुम ।
दे रहा सूचना पहले से, जो मर्जी हो वह करना तुम ।।

दो०- दास खड़ा कर जोड़ के, मन ही मन घबराय ।
रघुधन ने उल्लास से, लीन्हा गले लगाय ।। (१२७)

फिर दौड़े रघुधन गृह अंदर, लाये मुहरें भर अंजुरी में ।
बहु ना ना करता रहा दास, सब डाली उसकी झोरी में ।।
फिर बोले जाओ बांस वनी, हम पीछे पीछे आते हैं ।
जो लच्छू ने परिहास किया, उन्हें उसका मजा चखाते हैं ।।
कह देना लच्छू से जाकर, मैं नहीं आऊँगा बांस वनी ।
क्यों दौड़ गये वे अश्वों से, क्यों भूल गये काठी अपनी ।।
अतिएव बनें वह ही मामा, कर्तव्य बाद के कर लूँगा ।
वह अपनी बहिन सँभाल रखे, मैं तो बस भानज ले लूँगा ।।
इतना सुन दासों का मुखिया, मन ही मन में मुसकाय चला ।
हो प्रेम दोस्ती में ऐसा, हिय गाइ चला हरषाय चला ।।

दो०- दास शिरोमणि विदा कर, रघुधन बढ़े अगार ।
मुँह बोली के हेतु यह, होन लगे तैयार ।। (१२८)

देखी तैयारी लच्छू की, अब देखो रघुधन की बातें ।
पहुंचे निज पत्नी निकट तुरत, हँसते गाते औ मुस्काते ।।
बोले सुन लो ऐ अर्धांगिनि, है प्रसव वेदना भगिनी के ।
हो जाओ तुरत तैयार प्रिये, सब कार्य करो नीके नीके ।।

ले लो वस्त्राभूषण सब, जो काम में आवे बांस वनी ।
पहुचियां कड़े औ करधनियाँ, ले लेना जो हो स्वर्ण बनी ।।
इतना कह पत्नी से रघुधन, घर से बाहर को निकल पड़े ।
बुलवाए गायक और वादक, जो दौड़े आए द्वार खड़े ।।
फिर बुलवाया गौशाला से, निज गौशाला के मुखिया को ।
आज्ञा दी ले लो सौ गायें, जो ऊपर ना द्वि दतियाँ हो ।।

दो०- घी, मेवा, फल आदि का, लगा लिया अम्बार ।
लेकर रघुधन चल दिये, अपनी मूंछ सँभार ।। (१२६)

आगे है घोड़े पर रघुधन, पीछे पलकी में नारि चलीं ।
उसके पीछे बजते बाजे, लगता है जस बारात चली ।।
उसके पीछे रथ आते लखि, कुछ मित्र राह में टोक कहें ।
ऐ भाई रघुधन कहाँ चले, मुस्काते रास्ता रोक कहें ।।
रघुधन उनको समुझाय कहें, बतलाये बापस आकर के ।
यों समझो तुम्हें निमंत्रण है, आना खाना तुम जी भर के ।।
बतकही वहाँ पर खत्म हुई, तो बढ़े अगारी को रघुधन ।
सरपट दौड़ाया घोड़े को, झट पहुँच गये थी जहां बहिन ।।
सब छोड़ दिये रथ रब्भादिक, औ छोड़ पालकी को आए ।
पहुंचे लच्छू के निकट तुरत, थे खड़े मौन बिन मुस्काए ।।

दो०- लच्छू खिसिया कर कहें, आओ खाओ भात ।
इकले घर से चल दिये, शर्म न आई भ्रात ।। (१३०)

क्या आना यहाँ आवश्यक था, क्यों मुझ पर यह ऐहसान किया ।
इकले ठाड़े हो ठूठ ऐस, ना भावज तक को साथ लिया ।।
उस पर मुस्काते खड़े यहाँ, इतनी तुममें बेहयाई है ।
ले लें थोड़ा सा छोछक ही, यह तक तो शर्म ना आई है ।।

रघुधन बोले क्यों लाता मैं, छोछक करधनियाँ या पहुंची ।
आ गए अकेले आप यहाँ, ले मुझे साथ यह ना सोची ।।
मैं लाऊँ कुछ या ना लाऊँ, यह मेरी श्रद्धा मेरा मन ।
तुम कौन जो कहते हो मुझसे, मैं भाई औ वो मेरी बहिन ।।
लच्छू कुछ कहने वाले थे, नेत्रों ने देखा दृश्य एक ।
बजते बाजे आते देखे, औ दिखे पालकी रथ अनेक ।।
लच्छू सकुचाये मन ही मन, और समझ गए मसखरी करी ।
हँसकर के देखा रघुधन को, फिर मित्र की कौली जाय भरी ।।

दो०- निकट आ गई पालकी, आए सभी सवार ।
गई नारियां महल में, बाहर बैठे यार ।। (१३१)

इत खुशी संदेशा सुनने को, द्वारे है भारी भीड़ यहाँ ।
उत कोलाहल कुछ भारी है, दिखते पक्षिन के नीड़ जहां ।।
गौरैया फुदक फुदक डोले, तोती तोते के कंठ मिले ।
कागादिक ऐसे उछल रहे, जैसे उनको बैकुंठ मिले ।।
इतने में इक बिषधर काला, आ गया बृक्ष पर चढ़कर के ।
कुछ पक्षिन मारा सन्निपात, कुछ भागे उससे डरकर के ।।
बिषधर बोला पक्षियों सुनो, मत भागो मुझसे डरो नहीं ।
मैं तो यह कहने आया हूँ, चुप रहो कोलाहल करो नहीं ।।
समुहे दिखता जो भवन वहाँ, इक शिशु किलकाने वाला है ।
प्रारब्ध कहे की सर्पों का, जामाता आने वाला है ।
अतिएव खुशी की वेला है, कर रहे क्षमा नादानी को ।
वरना पल में चट कर जाते, जो खड़े सर्प अगवानी को ।।

दो०- मानव सर्पों का बने, कबहुँ न नातेदार ।
हंसि कह पक्षी सर्प से, क्यों बहकाते यार ।। (१३२)

मानव जामाता सर्पों का, वे पर की खूब उड़ाई है ।
आकार भिन्न आचार भिन्न, क्या यह भी समझ न आई है ।।
तुम घालक हो वह पालक है, पशु पक्षी जीव जन्तु सबका ।
तुम काल रूप वह रक्षक बन, भू पति कहलाता इस जग का ।।
उसके पाले सब पलते हैं, उस पर निर्भर है जग सारा ।
तुम तो जिस को पा जाते हो, खाते या बोते बिषधारा ।।
लगता है सर्प जाति ने जो, कर डाले अब तक पाप कर्म ।
उनको धोना ही हितकर है, तुम समझ गए यह गूढ मर्म ।।

दो०- नीचे सर्प समूह था, ऊपर पक्षिन हाट ।
निकट एक तपभूमि में, कुछ मुनि यों बतलात ।। (१३३)

उस बाँस वनी से योजन भर, पर तपोभूमि एक भारी थी ।
रमते तपते थे संत जहां, ऋषि मुनि की नगरी प्यारी थी ।।
भूत भविष्य या वर्तमान, कुछ भी ना छुपा दृष्टि से था ।
रहते तो थे वे एक जगह, पर ध्यान समस्त सृष्टि पे था ।।
पूजन वंदन या यज्ञादिक, तप आदिक दृश्य वहाँ के थे ।
पर आज लीक से हटकर के, सब बैठे एक जगह पे थे ।।
ढोलक झाझ मृदंग लिए, प्रभु का गुणगान कर रहे थे ।
कुछ ध्यान लगा था बांस वनी, कुछ तो प्रभु ध्यान कर रहे थे ।।
गाते थे ऋषि मुनि आता है, द्यूमासुर का संहारक अब ।
जो राक्षस बवुरीवन का है, उसका यम मानव तारक अब ।।
द्यूमासुर पापी राक्षस ने, ऋषियों को बहुत सताया है ।
बन काल दूत मंझा सुत अब, आया आया बस आया है ।।

दो०- ऋषियों की बाणी मधुर, मधुर झाझ झंकार ।
मृदुल मृदंग की मोहिनी, पहुंची स्वर्ग के द्वार ।। (१३४)

काँपा इंद्रासन इन्द्र कंपे, बोले देवो दौड़ो दौड़ो ।
जो छीन रहा है सिंहासन, जाओ उसका मस्तक तोड़ों ।।
जाओ रोको ऋषि मुनियों को, जो बेसुर राग अलाप रहे ।
यह भी मालुम करके आना, क्या कारण जो हम काँप रहे ।।
यह सुन बोले वृहस्पति जी, हे देवराज क्यों घबराओ ।
कोई ना छीने इंद्रासन, क्यों भेजो सबको दौड़ाओ ।।
मैं तुम्हें यहीं बतलाता हूँ, उन मृत्युलोक की बातों को ।
जिस वजह से काँपा इंद्रासन, उन आगामी सौगातों को ।।
उस मृत्युलोक में कुछ क्षण में, एक शिशु ब्रम्हा भिजवाएंगे ।
लिख दिया ब्रह्म ने आगत में, उससे वह तुम्हें हराएगें ।।
यह हार नहीं इंद्रासन की, यह हार स्वयंवर में होगी ।
यदि मोहे इन्द्र मानवी पर, तो बोलो कैसे जय होगी ।।
इसलिए न मन में घबराओ, संतुलित रखो मन के विचार ।
बस रहना दूर मानवी से, समझाता तुमको बार बार ।।

दो०- सर्प मगन, पक्षी मगन, मगन देव मुनि आदि ।
मंझा सुत का जन्म सुन, मगन प्रकृति इहि भांति ।। (१३५)

कलियाँ मुस्काती डाली पर, हँस रहे पुष्प हैं उपवन में ।
भौरे गायें तितिलियाँ नृत्य, कर रही देख लो उस वन में ।।
जिसमें बाँसों की साँय साँय, या खड़ खड़ ध्वनि गूँजा करती ।
अब पवन बजाते ऐसी ध्वनि, जैसे हो मधु वंशी बजती ।।
वेलें ऊपर चढ़ती देखो, बादल नीचे को आते हैं ।
निश्चल बृक्षादिक चंचल हो, सिर हिला हिला कर गाते है ।।
इस तरह खुशी की लहर एक, चहुं दिशि में भागी घूम रही ।
इत बाँस वनी में जो बैठी, वह मित्र मंडली झूम रही ।।
लच्छू यों बोले रघुधन से, भैया अब मुझको सबर नहीं ।
दो घड़ियाँ बैठे बीत गईं, अन्दर से आई खबर नहीं ।।

इन मूर्ख नारियों को देखो, आते ही अन्दर तो धाई ।
हम पूछ सकें क्या हाल वहाँ, एक बार भी बाहर ना आई ।।
नाउन दासी सब पगलानी, उनको ना खबर हमारी है ।
भैया तुम ही कुछ जतन करो, अब एक एक पल भारी है ।।

दो०- उलझन लच्छू की कहीं, पल में गई विलाय ।
ननद बनी ब्राह्मण सुता, रही तवा घटकाय ।। (१३६)

कवित्त-बजने लगे घंटे वहाँ, और झांझ ढोलक बज रहे ।
नचते है नर्तक, नर्तकी, खग और नचते अजदहे ।।
अब पवन की सनसन, भ्रमर की गूँजती स्वर लहरियाँ ।
गाते यहाँ खग दल मगन हो, झूमती तरु डालियाँ ।।
दस दिशि से आती हैं हवाएँ, रोकते रुकती नहीं ।
दर्शन करूँगी लाल का, तरु कान में यों कह रहीं ।।
चलती हुई लहरें रुकीं, पर घन घुमड़ता जा रहा ।
दर्शन करूँगा लाल का, कहते हुए भू आ रहा ।।
थाली बजी थाली बजी, थाली बजी थाली बजी ।
यह शोर करते देव, गन्धर्वों की टोली आ सजी ।।
है रुदन लालन का सुनाई, दे रहा बाहर जिसे ।
सब आ रहे दिगपाल भी, स्वर लहर से उसके खिंचे ।।
वह आ गया सुत आ गया, यह शोर चारों ओर था ।
पर नजर से दूर सबकी, अब भी वह चितचोर था ।।

टनटन टनटन टनटन टनटन, वह तवा बजाती जाती है ।
लच्छू दौड़े पूछें बिटिया, क्या हुआ नहीं बतलाती है ।।
यह करें चिरौरी वह मटके, यह पैर पड़े तो वह झिटके ।
यह वानर सा कर्तव्य करें, वह बनी मदारी बेखटके ।।
ये दिन हीन वह दाता सी, ये प्यासे से वह नदी बनी ।
बहिना की चिंता रोग इन्हें, उसकी जुबान औषधी बनी ।।

वह हँसती औ मुसकाती है, पर नहीं खोलती जुबां यहाँ ।
लच्छू मन ही मन तड़प रहे, ऐसा सुंदर था शमा यहाँ ।।
इतने में रघुधन बोल पड़े, भैया करवाते तौहीनी ।
पूछो अन्दर की खुशखबरी, ना फूटी कौड़ी तक दीन्ही ।।
तुम हटो पूछता मैं इनसे, हे बिटिया लो मोती माला ।
जो कुछ मन में हो मांग सुता, पर मुँह का खोलो तुम ताला ।।

दो०- ब्राह्मण की बिटिया कहे, मन्द मन्द मुसकाय ।
सेठ तुम्हारी बहिन खुश, पुत्र रत्न को पाय ।। (१३७)

आया है ऐसा पुत्र एक, जो सुंदर सुघड़ सलोना है ।
नजरें ना टिकती चेहरे पर, यों रूपवान वह छौना है ।।
उस लाल के भू पर आते ही, गन्धित हो गया भवन सारा ।
ऐसा लगता है गंधी ने, निज इत्र उड़ेला हो सारा ।।
लगता है मेरी भावज ने, उज्ज्वल पदार्थ कोई खाया है ।
इतना उज्जवल इतना उज्जवल, है ललन चंद्र शरमाया है ।।
हे सेठ सुनो है मातु कुशल, अब कुछ क्षण तुम बिश्राम करो ।
मैं तुम्हें दिखाऊँ भानज ला, बस कुछ पल मन में धैर्य धरो ।।
तुम अपना कर्म करो सेठों, मैं अपना धर्म निभाती हूँ ।
तुम ग्रह इत्यादि विचारबाओ, मैं सोहर आदि गवाती हूँ ।।

दो०- दूर चाँद पर चाँदनी, शीतल करती देह ।
मंझा सुत देखे बिना, उमड़ा सबके नेह ।। (१३८)

लच्छू बोले बाजे वालों, बजने दो पपिहा तुरही को ।
झांझे ढोलक नक्कारों से, हिलने दो सारे पुर ही को ।।
गाओ गाओ, नाचो नाचो, अब क्यों कर देर लगाई है ।
जिस लिए बुलाया तुम्हें यहाँ, वह घड़ी यहाँ पर आई है ।।
ऐ मित्र खजांची क्यों बैठे, रखि मौन यहाँ आओ आओ ।

अनमोल खुशी की वेला है, सोने की मोहरें लुटवाओ ।।
पण्डित जी खोलो पत्रा को, तुम अपनी विद्या दिखलाओ ।
जो भानज जन्मा घर मेरे, उसका भविष्य तो बतलाओ ।।
रघुधन भैया तुम गले लगो, फिर जो दीखे वह कार्य करो ।
इस पुण्य शहद के छत्ते का, सब शहद निचोड़ो मौज करो ।।

दो०- नाचें नर्तक, कर रहे, ढ़ोल मजीरा नाद ।
हरषहिं खग नभ भूमि पर, सर्प, ऋषी मुनि आदि ।। (१३९)

बज रहा नक्कारा बाँस वनी, तू तू तू तू तुरही बोली ।
काले पीले और रंगीले, नभ झूमे पक्षिन की टोली ।।
बुलबुल कोयल औ बगुलों ने, मिल ऐसी छटा बनाई है ।
ले रंग बिरंगी चिड़ियों को, नभ में फुलवारि लगाई है ।।
वादन होता है बाँस वनी, गायन नभ में होता देखो ।
लगता है यश गन्धर्वों का, स्वर लहरों में खोता देखो ।।
गौरैया ठुमुक ठुमुक नाचे, सब मोर पंख फैलाते हैं ।
साधारण खग फल लूटा चुके, अब मोती हंस लुटाते हैं ।।
उल्लू बोला क्यों मगन सभी, कागा बोला क्या याद नहीं ।
वन में जिसके हम रक्षक थे, सुत हुआ उसे है नारि वही ।।

दो०- रोम रोम पुलकित हुआ, लखि खग दल का हर्ष ।
वे रोयें वे पर उड़े, करें न भू स्पर्श ।। (१४०)

है सर्प जाति बिन रोयें की, भू पर चक्षुश्रवा कहाती है ।
नभ देखि देखि खगदल सहर्ष, वह पुलकित होती जाती है ।।
इनमें हैं बिषधर काले कुछ, तो रूपवान तक्षक भी है ।
यदि दुमुंही पनिहा सीधे हैं, तो अजगर सम भक्षक भी है ।।
कुइलिया गड़ार नाग चटकन, घोडा पछार सब खड़े यहाँ ।
कुछ समझे लालन बाहर है, उत्सुक हो बृक्ष पे चढ़े यहाँ ।।

भू पर तो फणिधर फुफक रहा, अजगर फुफकारे डाली पर ।
बहु यत्न करें सब दर्शन का, पर नजर पड़ी ना माली पर ।।
यह देखि नाग बन कर मुखिया, सब सर्पों से यों बोल उठा ।
क्या कहोगे राजा वासुकि से, भैया मेरा मन डोल उठा ।।

दो०- उत्सुकता जो सर्प मन, मिटिहै औषधि पाइ ।
यही अग्नि ऋषि मुनि हृदय, भैया कौन बुझाइ ।। (१४१)

मंझा सुत बाहर आएगा, सब सर्प करेगें दर्शन को ।
योजन भर दूर हैं ऋषी मुनी, कस शान्ति करें आकर्षण को ।।
उस तपोभूमि में ऋषियों ने, जन्मा सुत है यह जान लिया ।
है यही काल द्यूमासुर का, निज तप से यह भी मान लिया ।।
फिर बारी आई दर्शन की, सब योगासन पर बैठ गये ।
जब ध्यान लगाया बाँस वनी, तो भवन के अंदर पैठ गये ।।
वे ध्यान में दर्शन करते हैं, कुछ ध्यान न अपना रहा उन्हें ।
लखि सुंदरताई द्रवित हुये, मंझा सुत अपना रहा उन्हें ।।
जो छोड़ सकल संसार गये, उनके हिय में बस रहा ललन ।
आकर्षित करता उपकारी, सबको इस जग का यही चलन ।।

दो०- निज हृदय में शान्ति पा, सन्त हुए तपलीन ।
जानी हार परोक्ष जब, इन्द्र हुये गमगीन ।। (१४२)

हो गये भ्रमित उस समय इन्द्र, वे मन घमण्ड करि डोल रहे ।
हैं देव श्रेष्ठ नर तुच्छ जानि, निज मनहिं तराजू तोल रहे ।।
सोचें मैं हूँ देवेन्द्र श्रेष्ठ, वह तुच्छ मानवों का बालक ।
क्या ऐसा दिवस भी आयेगा, जीतेगी कृति हारे पालक ।।
इतने में आए देव ऋषी, वे जान गये उन बातों को ।
भू लोक में जन्में बालक के, और इन्द्र देव के नातों को ।।
बोले सुनिए हे देवराज, क्यों मन उत्सुकता भारी है ।

ब्रह्मा की जितनी कृतियाँ है, उनमें मानव कृति न्यारी है ।।
है देव नहीं पर देव सभी, हो सकते मानव के वश में ।
पल में ले सकते इंद्रासन, वो शक्ति है मानव अंतस में ।।
यदि धर्म मार्ग को छोड़े ना, मन से वे पूजन भजन करें ।
तो इंद्रासन क्या इन्द्र खिचें, ना रुकें ब्रह्म प्रयत्न करें ।।
पर पिता हमारे ने उनको, उनकी मर्यादा में बांधा ।
यदि देव रहें मर्यादा में, ना इत बाधा ना उत बाधा ।।

दो०- गूढ कथन के मर्म को, इन्द्र गये है भाँप ।
तर्क सुझाई ना दिया, खड़े मौन चुपचाप ।। (१४३)

अब समझ गये यह इन्द्र देव, मेरे वश का ना उलट फेर ।
मिटिहै ना लिखा विधाता का, चहे यत्न करूँ मैं वेर वेर ।।
यह सोच मौन हो बैठे ये, अब बाँस वनी की बात सुनो ।
घन उमड़ घुमड़ कर खुशियों के, कर रहे मोद बरसात सुनो ।।
लच्छू बोले ऐ पण्डित जी, ग्रह देखो दशा विचारो तुम ।
गुण आदि बता दो भानज के, फिर नामकरण कर डालो तुम ।।
पण्डित बोले ऐ सेठ सुनो, आया है लालन शुभ घड़ियाँ ।
ग्रह बैठे सब उत्तम घर में, आशिषे नक्षत्रों की लड़ियाँ ।।
पर कुछ ग्रह टेढ़े मेढ़े है, जो राहु केतु के साथ खड़े ।
वे माँ को कष्ट बताते है, तुम पर भी तनिक प्रभाव पड़े ।।
होगा जब लालन सोलह का, तब ओले बरसेंगे दुख के ।
दो बर्ष कष्ट में बीतेंगे, फिर होगे दिन सुख ही सुख के ।।
पर वर्ष सोलहवें में भैया, कुछ ऐसा वानावर्त बनें ।
छूटेगा सुत निज माता से, दुश्मन होगें उसके अपने ।।

दो०- विधि लेखा मिटता नहीं, कोटिन करो उपाव ।
सुत सम पलिहौ सेठ तुम, पर तब करो दुराव ।। (१४४)

उद्विग्न न होना तुम भैया, यह तो है लिखा विधाता का ।
तुम कार्य करो नर के समान, सम्मान करो निज नाता का ।।
मत भेद को मन में रखना तुम, मत भाव को नीचे गिरने दो ।
तुम कर्म करो कर्तव्य करो, उस प्रभु को गणना करने दो ।।
होते जो अच्छे कर्म सुनो, तो प्रभु भी झुक जाते भैया ।
होती है लिखावट भी धूमिल, जो पुण्य डाँढ खेवे नैया ।।
अतिएव त्याग कर सब विचार, अब नाम सुनो तुम लालन का ।
यह राज्य करेगा 'नरवर' पर, इसलिए नाम भी 'नल' होगा ।।

दो०- लच्छू मन चिन्ता घनी, दिल में उठती हूक ।
रहूँ शरण जब पुण्य के, कैसे होवे चूक ।। (१४५)

मैं नर हूँ पशु तो नहीं हाय, जो पशुता को दर्शाऊंगा ।
जिनको है मैंने बहिन कहा, क्यों उनका पुत्र सताऊंगा ।।
फिर पता नहीं ये पण्डित जी, क्यों मुझको इतना डरपाते ।
कुछ पोथी पत्रा भी कहती, या यों ही मुझको भरमाते ।।
अब कारण चाहे कुछ भी हो, यह सत्य बनें या झूठ रहे ।
पर वो क्यों इससे डर जाये, जो धर्म पुण्य की बांह गहे ।।
यदि पण्डित को है यह गुमान, यह धर्मशास्त्र के ज्ञाता हैं ।
तो मैं भी नहीं अधर्मी हूँ, बस पुण्य से अपना नाता है ।।
जब पाप नहीं संताप कहां, जब धर्म साथ हो शाप कहां ।
शुभ कर्म करूँ जब निज कर से, तो क्यों आवे दुख ताप यहाँ ।।
इसलिए भूलकर सब विचार, निज कर्म करूँगा शुभ मति से ।
चलने दो काल चक्र को तो, वह तो चलता अपनी गति से ।।

दो०- कलुषित मन दुरबल करे, तन, प्रण और विचार ।
निर्मल मन है गंग सम, करता बेड़ा पार ।। (१४६)

लच्छू के मन में शुभ विचार, ने जगह बनाई स्थायी ।
तब डपट कहा साजिन्दों से, क्यों नहीं बज रही शहनाई ।।
बैठे हो तुम तो मौन रखे, क्या शक्ल देखने आए हो ।
सब समय निकलता जाता है, तुम ढोल आदि दुबकाए हो ।।
इतना सुनकर सजिन्द सभी, सब साज खोल कर बैठ गये ।
नर्तकों ने बांधे पग घुंघरू, दिखलाते ठुमके नए नए ।।
तबला तब बोला ताक धिना, झांझे झंकारी झम झम झम ।
ठुमरी और राग विलावल में, खोये लच्छू हैं रघुधन संग ।।
इतने में दाई निज कर में, ले करके आई नव शिशु को ।
बोली न्योछावर दे मेरी, वह दर्शन करना हो जिसको ।।
वरना मैं लालन के मुख से, ना रेशम वस्त्र हटाऊँगी ।
ले जाऊँगी अन्दर शिशु को, यदि मनचीता ना पाऊँगी ।।

दो०- यह सुन लच्छू उठ पड़े, ले रघुधन को साथ ।
मोहर, अशर्फी अनगिनित, दी दाई के हाथ ।। (१४७)

लच्छू बोले मेरी गोदी, रघुधन बोले मेरी गोदी ।
दे दे दाई अब शिशु को तू, मत बातें कर वोदी वोदी ।।
यदि और चाहिए कुछ तुझको, तो मांग खड़े हम देने को ।
सब मांग करेंगे पूरण हम, भानज को गोदी लेने को ।।
दाई बोली दस्तूर सभी, कर दिये पूर्ण तुम दोनों ने ।
आर्यों की रीति रिवाजें कब, है तौली जाती सोनों में ।।
अतिएव मुझे कुछ ना चाही, मैंने तो रीति निभाई है ।
प्रभु सबको ऐसे भाई दे, जैसे मंझा के भाई हैं ।।
पर गोद तुम्हारी ना दूँगी, ना पास तुम्हारे लाऊँगी ।
जब तक है बालक सौंर मध्य, बस केवल दर्श कराऊंगी ।।

दो०- यह कह दाई ने तुरत, लीन्हा वस्त्र हटाय ।
कोमल सुंदर गात लखि, लच्छू जी हरषाय ।। (१४८)

है गौर वर्ण चौड़ा ललाट, नासिका नन्द के छौना सी ।
भौहें है कारी कजरारी, पलकें कमला के बिछौना सी ।।
है नेत्र नखत नयनाभिराम, औ होंठ गुलाब की पंखुड़ियाँ ।
गालों पर लाली ऐसी है, जस भोर की किरणों की कड़ियाँ ।।
है रूपवान शिशु इतना यह, शरमाते नभ में तारागण ।
लगता है कामदेव आकर, कर गये रूप अपना अर्पण ।।
लच्छू का मन प्रसन्न हुआ, रघुधन मन ही मन हरषावें ।
लखि रूप सलोने का सुंदर, अब पवन सनन सन सन्नावे ।।
दाई ढाके मुख आँचल से, पर पवन खोलते झोके से ।
नभ में पक्षी कलरव करते, जब दर्शन पाते धोखे से ।।
ऋषियों ने दर्शन निज तप से, उस तपोभूमि से कर डाले ।
आशीष दिया शत आयु बनो, चिरजीव रहो आने वाले ।।
पर सर्प बेचारे परेशान, झाँके भू से तरु डाली से ।
कुछ जाय चढ़े फुनगी ऊपर, ना डरे मौत भी काली से ।।
दर्शन करते है नव शिशु का, बतलाते अपने मित्रों को ।
जो सुन सुन कर ही खींच रहे, उस लालन के मुख चित्रों को ।।

दो०- तन मन सुधि विसराय के, सर्प, मनुज, खग आदि ।
दर्शन का सुख ले रहे, दाई डाली व्याधि ।। (१४६)

लालन को ढाका आंचल से, वह अन्दर कदम बढ़ाय रही ।
दर्शक ठाढ़े सब सन्न मन्न, जैसे कर से निधि जाय रही ।।
पर रुकी नहीं दाई बाहर, वह भवन के अंदर पैठि गई ।
मंझा सुत की सुंदर सूरत, इत सबके हृदय बैठि गई ।।
उस सूरत को रख हृदय मध्य, सर्पों ने तब प्रस्थान किया ।
भू पर गाती नर्तक टोली, नभ में पक्षिन ने गान किया ।।
भू पर गायन नभ में गायन, है होड़ हो रही अति भारी ।
लगता है हारेंगे थलचर, जीतेंगे इन से नभ चारी ।।

नभ की बोली भू की बोली, सब ऐसी गड्डम गड्ड हुई ।
ना आवे समझ ग़ज़ल ठुमरी, अब ध्रुपद की भी भद्द हुई ।।
ना ये माने ना वो माने, ऐसा है सबको ताव चढ़ा ।
नभ में पपिहे की पिउ पिउ है, भू पर बजते पैंजनी कडा ।।

दो०- बाँस वनी में इस तरह, कुछ दिन छाया मोद ।
हरषहिं लच्छू आदि सब, लखि शिशु मंझा गोद ।। (१४६)

होते है जितने कर्मकाण्ड, सब होने लगे वहाँ पर हैं ।
छठि हुई वहाँ पर जोरों से, पसनी भी हुई वहाँ पर है ।।
लच्छू रघुधन ने छोछक दे, मामा का धर्म निभाया है ।
पत्नियों ने उनकी बढ़ चढ़ के, तब अपना पद दिखलाया है ।।
ब्राह्मण की पुत्री ननद बनी, मंझा की निकासी करवाई ।
लेकर के दक्षिणा लच्छू से, सब सौंर साथ में लिपवाई ।।
लच्छू रघुधन ने भोज दिया, ब्राह्मणों को भोजन करवाया ।
धन धान्य गऊ और वस्त्रादिक, दक्षिणा में उनको पकड़ाया ।।
फिर कन्या भोज किया भारी, सब इष्ट मित्र भी बुलवाये ।
सब दास दासियों के समेत, कारिंदे आदिक जिमवाये ।।
धन धान्य लुटाया दोनों ने, ना कमी रखी कुछ देने में ।
सब दास दासियाँ आदिक के, थक गये हाथ है लेने में ।।
इस तरह हुआ नल जन्म यहाँ, अब कलम हमारी रुकती है ।
जो किया यहाँ बेगानों ने, लेखनी नहीं लिख सकती है ।।

दो०- प्रथम खण्ड सम्पूर्ण है, पढ़िये ध्यान लगाय ।
पुण्य लाभ हो दो गुना, सस्वर जो भी गाइ ।। (१५१)

कवित्त-अब गाइ कर सस्वर इसे, पुण्यात्मा बन जाइए ।
सब पाप कलयुग के नसेंगे, प्रभु निकट तो आइये ।।
मत जानना इसको कथा, केवल है राजा रानि की ।
यह कथा है धैर्य की, दुख में मनुज के ज्ञान की ।।

पंख लग जाते है दुख में, धान्य औ सम्मान के ।
बनते परीक्षक है प्रभू भी, हर दुखी इंसान के ।।
लेते परीक्षा धैर्य की, तब धर्म बनता अल्पना ।
है श्रेष्ठ वे ही जो दुखों में, करत सुख की कल्पना ।।
नर छोड़कर के जो धर्म को, भटक जाते दुक्ख में ।
सत्कार्य होते नष्ट औ, गिरते नरक के मुक्ख में ।।
दुख सुख को इस संसार में, तुम धूप छाही जानिए ।
पर धर्म को सत्कर्म को, वैकुंठ थाती मानिए ।।

दो०- हे युधिष्ठिर यह कथा, दुख की हरती पीर ।
कलयुग में यदि दुख बढ़े, यह औषधि गम्भीर ।। (१५२)

वृहदश्व कहें युधिष्ठिर से, यह प्रथम खण्ड सम्पूर्ण हुआ ।
जिस धूप छाँव में नल जन्में, उसका वृतांत भी पूर्ण हुआ ।।
अब तुम भी कुछ विश्राम करो, हम भी विश्राम करेंगे अब ।
जो कथा यहाँ के आगे की, कल संध्या काल कहेंगे अब ।।
कल तुम्हें बताएँगे कैसे, नल बड़े हुए उठ खड़े हुये ।
क्यों लच्छू जैसे धर्मवीर, भी नल के दुश्मन कड़े हुये ।।
कैसे मारा द्यूमासुर को, कैसे नरवर पे राज्य किया ।
क्यों बने जामाता नागों के, कैसे ब्याही है नाग त्रिया ।।
क्या रघुधन का कर्तव्य रहा, क्या निषद राज्य में होता है ।
किसने पाया कितना कितना, और कौन कौन क्या खोता है ।।
मंझा मिल पाईं निज पति से, या जंगल में ही पड़ी रहीं ।
इन सब बातों की गुत्थी की, अनसुलझी अब तक कड़ी रही ।।
कल फिर बैठेगे हम दोनों, तब सब बतलाएंगे तुमको ।
खिल पाया सुख का कमल कभी, या दुख ही रहा सदा नल को ।।

दो०- संध्या करि, भोजन किए, ऋषि वृहदश्व सुखधाम ।
शयन समय पांडव सभी, हिलमिल दावे पाँव ।। (१५३)

(इति)

स्व. देवेन्द्र कुमार शर्मा

(दिनांक 01.06.1976-29.05.2019)

जड़ तो जड़ ही है अरे, चेतन तू तो चेत ।
भ्रम निकुंज यह जगत है, क्यों तू पड़ा अचेत ।।

स म र्प ण

कहते हैं सपने आते हैं,
जो भी परिजन मर जाते हैं, वो सपने में डरपाते हैं !

कल तक जिसे दुलारा माँ ने, भाई ने भी प्यार किया है,
संतति जिससे पितृवान थी, त्रिया ने श्रंगार किया है !
वो लेटा सुध-बुध बिसराकर, सब रिश्ते छूटे जाते हैं !!

माँ की कोख उजाड़ चला वह, करके क्यों खिलवाड़ चला वह
रोते-धोते परिजन छोड़े, भाई-भुजा उखाड़ चला वह !
सूनी करके अंगनाई को, होके वो निष्ठुर जाते हैं !!

सौ-सौ सूरज उगे किन्तु अब, दिन अँधियारे से लगते हैं,
मन और नेत्र तुम्हें ना पाकर, हारे-हारे से लगते हैं !
कहाँ पुकारूँ, कहाँ ढूंढ लूँ, ज्ञानी भी ना बतलाते हैं !!

ऐसे क्यों रूठे हो भाई, कम से कम सपने में आओ,
योनी बदलो, रूप बदल लो, आकर कुछ तो बतियाओ !
तड़पन दिल की कुछ तो कम हो, वरना अब हम भी आते हैं !!

-पं. रवि शर्मा एडवोकेट

हिन्दी साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक
दिल्ली
उत्कर्ष प्रकाशन
मेरठ
ISBN 978-93-84312-54-1
9 789384 312541
₹ 150.00